वीरमणि

लेखक

श्यामविहारी मिश्र एम० ए०

और

शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१-६२७ मूल्य १)

मानसिक-संयम

जब कोई पुरुष परमेश्वर के दर्बार में पहुँचने के निमित्त पग बढ़ाता है, तो उस समय उसे जिन जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उनमें से एक यह भी है कि चित्त की वृत्तियों को किस तरह अपने वश में किया जाय। यह कार्य कितना दुरूह एवं जटिल है, इसे वही लोग समझ सकते हैं जिन्होंने कभी इसके करने की कोशिश की है। हमारे मन की गति कितनी चंचल है, उसपर नियंत्रण करना कितना

कठिन है, और उसमें एक के बाद दूसरी फिर तीसरी एवं चौथी कल्पनाओं के उत्पन्न होने की क्रिया किस तरह जारी रहती है, हमें इन सब का पता तभी चलता है, जब हम अपने चित्त को काबू में करने का प्रयत्न करते हैं। हमें यह सोचते हुये बड़ी लज्जा लगती एवं आश्चर्य होता है, कि हमारा बहुत सा कीमती समय उद्देश-रहित एवं चंचल विचारों मे नष्ट हो गया है। यदि हम उसका सदुपयोग करते, उसे किसी अच्छे कार्य मे लगाते तो हमारा चरित्र गठित होता, और हम अपने आ-दर्श व्यक्तित्व को बढ़ाते हुये महान आन्तरिक शक्ति प्राप्त करते।

सचमुच वह दिन उसके जीवन का सुनहला समय होगा जिस दिन किसी को उपर्युक्त सत्य की वास्त-विकता विदित हो जायगी।

प्रथम तो मन वश में होना ही नहीं चाहता। वह एक नई अवस्था के चंचल घोड़े की तरह लगाम नहीं लगाने देता और स्वच्छन्द रहना चाहता है। लेकिन यदि हमें सफलता पाना है तो धैर्य रखना होगा और अपने भागते हुये चंचल विचारों को बार बार ज़ोर

तरीका यह है कि अपनी सुविधा के अनुसार एक खास समय निर्धारित कर लिया जाय। यदि यह समय सवेरे का हो तो अत्युत्तम। उसी निर्दिष्ट समय पर प्रति दिन दस मिनट से लेकर पन्द्रह अथवा बीस मिनट तक अभ्यास किया जाय और एक सप्ताह बाद आध घण्टे तक। पश्चात् इसके, ज्यों २ सफलता मिलती जाय और मानसिक-संयम के आनन्द की अनुभूति होती जाय त्यों त्यों अभ्यास बढ़ाता जाय।

अभ्यास करने का एक ढंग और भी सर्वोत्कृष्ट है, वह यह कि किसी एक शब्द को चुन ले और उसपर अपने मन को स्थिर करे। मान लो तुमने 'सहानुभूति' शब्द को लिया। अब सोचो 'सहानुभूति' शब्द कितना सुन्दर है, इसके अन्दर सुख एवं शान्ति देने वाली कितनी गहरी शक्ति है और उसका प्रयोग हमें कब और कैसे करना चाहिये, इसे प्रत्येक पहलू से सोचो और इसका विश्लेषण करो। शायद तुम्हें इस बात का अनुभव हो कि बीच ही में तुम्हारा मन दूसरी ओर घूम गया है। अब तुम इसपर भी विचार करने लगे कि "अहा! यह दूसरा विषय भी तो बड़ा सुन्दर है, चलो इसी पर

देकर पीछे की तरफ़ खींच लाना होगा। अवश्य ही हम खिन्न होंगे, उत्साह भंग होगा, विफलमनोरथ हो जाने की आशंका से प्रयत्न को त्याग देने की अभिलाषा होगी, मगर ऐसा करने पर हमारा ही नुक़सान होगा।

हमें सर्वप्रथम अच्छी तरह यह जान लेना चाहिये कि मानसिक-संयम में धैर्य्य नहीं हो सकता। जल्दी करके कार्य्य में असफल हो जाने की अपेक्षा शनैः शनैः चलकर सफलता के सन्निकट पहुँचना अधिक उत्तम है। जो लोग शुरू शुरू में ही अत्यधिक सफलता प्राप्त करने की इच्छा से चित्त को स्थिर करने मे अधिक समय लगा देते हैं, उनका मस्तिष्क अनभ्यस्त होने की वजह से शिथिल हो जाता है, और उसमें अपना काम पूरा करने की शक्ति नहीं रह जाती। वास्तव में यह मानसिक-संयम का कार्य्य सुन्दर है चाहे हम सुन्दर शब्द को किसी भी अर्थ में क्यों न प्रयुक्त करें। कारण जब तक मनुष्य अपनी मानसिक शक्तियों पर विजय नहीं प्राप्त कर लेता तब तक वह मनुष्यता को प्राप्त ही नही हुआ है।

मानसिक-संयम के अभ्यास करने का एक उत्तम

विचार करें, पर तुम्हें ऐसा कदापि न करना चाहिये। अपने मन को उसी पुराने शब्द की ओर फिर खींचो और उसी पर स्थिर करने का भरपूर प्रयत्न करो। दूसरे दिन अपनी इच्छानुसार दूसरा शब्द चुन सकते हो और उसपर यह विचार कर सकते हो कि इसका सम्बन्ध हमारे जीवन और आचरण से क्या है। स्मरण रखो शब्दों के द्वारा तुम उसके सिद्धान्तों पर पहुँचोगे और तुम्हें शीघ्र ही इसका पता लग जायगा कि तुम्हारे प्रति-दिन के निश्चित विचार कार्य्यरूप में परिणत होते जा रहे हैं और तुम्हारे चिन्तन का तत्व तुम्हारे जीवन का एक उपयोगी अंग बनता जा रहा है। ऐसा होना अनि-वार्य है क्योंकि मनुष्य वैसा ही बन जाता है, जैसा कि वह गम्भीरतापूर्वक विचार करता है।

एकबार मैंने एक लड़की को देखा था, जिसे लिखना नहीं आता था। इसके लिये वह बेचारी स्कूल में हमेशा डाटी फटकारी जाती थी। अध्यापकों ने भी यही समझ लिया था कि अब इसका लिखना अच्छा नहीं हो सकता। लड़की का भी उत्साह क्षीण हो गया था और वह नि-राश हो चुकी थी। संयोगवश वह एक दिन अपनी

सहेली के घर गई। उसको सहेली ने उसकी खिन्नता का कारण पूछा तो उसने अपनी कथा कह सुनाई। उसकी सहेली ने कहा-"अच्छा, बताओ तुम्हें किस ढंग का लिखना पसन्द है?" लड़की ने उत्तर दिया मैं क्या बतलाऊ! मैं तो ऊब गई हूँ, मुझे अपनी लिखी हुई कापियों को देखते ही घृणा हो जाती है।

उसकी सहेली ने कहा इस वक्त कापियों की चर्चा मत करो। तुम मुझे यह बतलाओ कि तुम्हारी दृष्टि में किसका लिखना बहुत सुन्दर लगता है। लड़की ने फौरन कहा "अमुक लड़की का। मुझे महान खुशो हो, यदि मेरा लिखना वैसा ही हो जाय। मगर यह असम्भव है क्योंकि मेरे अध्यायपकों ने भी मेरे लिये कहा है कि तुम अच्छा नहीं लिख सकती।"

सहेली ने कहा—मेरी एक बात सुनो और उसे मानो। तुम्हारी भद्दी लिखावट के विषय में जो कुछ तुम्हारे अध्यापकों ने कहा है उसे हटाओ, अपनी कापियों की भी चिन्ता छोड़ो और अपना मन उस सुन्दर लेख की तरफ लगाओ—जो तुम्हें इतना पसन्द है। उस

लड़की के अक्षरों को ध्यान से पढ़ो, उसके चढ़ाव, उतार और घुमाव फिराव को गौर से देखो। दिन में कई बार उस लेख को अपने मस्तिष्क पर चढ़ावो और उसका चिन्तन करो। जब लिखने लगो तो सोचो कि तुम्हारा लेख हूबहू वैसा ही बनता जा रहा है और उस आनन्द की काल्पनिक अनुभूति भी करते जाओ जो तुम्हें वैसे ही सुन्दर लेख लिख लेने पर होगी।

लड़की को यह बात पसन्द आई और उसने तदनुकूल कार्य करने की प्रतिज्ञा की। थोड़े ही समय में उसका लेख इतने अच्छे रूप में परिणत हो गया कि अध्यापकों को भी आश्चर्यान्वित हो जाना पड़ा। इस छोटे से उदाहरण से यह स्पष्ट विदित हो जाता है कि एकाग्रचित्त की धारा कितनी प्रबल होती है और निश्चित आदर्श में कितनी शक्ति होती है!

जेम्स एलेन ने कहा है:—

"मनुष्य अपने विचारों के अनुकूल निम्न अथवा उच्च पटलों मे निवास करता है। उसका संसार उतनाहीं अन्धकारपूर्ण तथा कलुषित होता है, जितना उसके विचार में रहता है। अथवा उतनाही विस्तृत और विशाल होता है जितना उसमें समझने की शक्ति होती है।

उसके इर्द गिर्द के सभी पदार्थ उसके विचारों के रंग में रंगे होते हैं।"

जिसतरह उस लड़की को अपना लेख सुन्दर बनाने के लिए एक आदर्श की आवश्यकता, थी उसी तरह हमारी आत्मा एवं चरित्र को भी सुगठित करने के लिए एक महान आदर्श की आवश्यकता है। पहले मनुष्य को अपनी परीक्षा करनी चाहिए और अपने को अच्छी तरह जान लेना चाहिये। यद्यपि यह विषय उतना सरल नहीं है जितना कि समझ पड़ता है—क्योंकि चित्त की वृत्तियाँ बहुत ही सूक्ष्म होती हैं। तोभी यदि मनुष्य मन को वश में करने का अभिप्राय समझता है तो उसके लिये यह आवश्यक है कि वह अपने को जानने का प्रयत्न करे। हम अपने प्रति खूब सतर्क रहें, अपने उद्देशों की छानबीन एवं अपनी लालसाओं की जाँच करते रहें। हम अपने से यह प्रश्न करें कि "हमने ऐसी बात क्यों कही? हमने ऐसा कार्य्य क्यों किया?" इत्यादि। हमें प्रतिदिन के कार्यों पर एक दृष्टि डालनी चाहिए और यह सोचना चाहिये कि हमने आज क्या उचित किया और क्या अनुचित। यदि अपने

अन्दर किसी बात की कमी देखें तो उसे निःसंकोच भाव से स्वीकार कर ले। यदि तुम ऐसा करने के लिए कटिबद्ध हो तो आत्म-निरीक्षण के लिये थोड़ा सा समय निकाल लो जिससे तुम्हें यह पता चले कि तुम क्या हो और किस अवस्था में हो? तुम आत्म-परीक्षा से न डरो और न उसका फल स्वीकार करने में आना-कानी करो। स्मरण रखो आदर्श-प्राप्ति का मतलब होता है आत्मोद्धार करना। अर्थात् हम अपने को जो समझते हैं—उससे उस सीमा तक जाना जहां तक कि हम जाना चाहते हैं। सारी उच्च आकांक्षाओं का उद्देश ही यही होता है कि हमारी आत्मा किसी अप्राप्त वस्तु के पाने की इच्छा करती है। अर्थात् हम किसी ऐसी वस्तु के लेने के लिये हाथ बढ़ाना चाहते हैं जो हमें अभी तक प्राप्त नहीं हुई थी।

हमें इस तरह सच्चे आत्म-संशोधन एवं अपनी अवस्था को समझ कर अपना आदर्श निश्चित कर लेना चाहिये और अपनी चित्त-वृत्तियों को रोकते एवं अपने वश मे करते हुए उस आदर्श को हमेशा अपने समक्ष रखना चाहिए। यदि हम हतोत्साह होकर बैठ न गये

तो यह निश्चित है कि दिनदिन हम उसके सन्निकट पहुँचते जायँगे । आदर्श की कल्पना हमारे मस्तिष्क-पटल पर अङ्कित रहेगी और अन्ततः इसी के द्वारा हम सत्य का साक्षात्कार कर सकेंगे ।
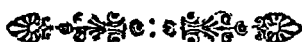
मनुष्य की कल्पनात्मक शक्तियों से ही उसके जीवन में आत्मनिर्माण का कार्य होता है। विचार करना आत्म-निर्माण करना है। एक तरह से हमारा सारा जीवन आत्म-निर्माण करने में ही बीता है फिर भी हम इससे अनभिज्ञ रहे हैं। हमारे ख्याल से यह कोई दूसरी अद्भुत एवं दैवी शक्ति है जिसे प्राप्त करने के लिये हमें अधिक समय की जरूरत है। हमने यह समझ रक्खा है कि यह शक्ति हमसे भिन्न है परन्तु यदि

हम कोशिश करें तो इसे हस्तगत कर सकते हैं। हमको यह मालूम नहीं कि जिसकी खोज हम कर रहे हैं वह सर्वदा से ही हमारे पास है और हमारे अन्दर है। चूंकि हमारे अन्दर उसके संचालन करने का माद्दा नहीं, निर्दिष्ट लक्ष्य को भावना नहीं, अतः यह आत्म-शक्ति केन्द्रीभूत न होकर एक जलधारा की तरह व्यर्थ प्रवाहित हो रही है। और फल स्वरूप हमारा जीवन लक्ष्य-हीन एवं हमारा अस्तित्व निरर्थक हो रहा है।

इतना ही नही, इस शक्ति का दुरुपयोग भी हमने खुद किया है यद्यपि हम उसे जानते नहीं। वह इस तरीके से कि रोग, शोक, चिन्ता दुःख क्लेश, वेदना और विषाद को अपने मे स्थान दिया है, उसको चिन्तना की है और उसे मनुष्य-जीवन का एक अंग मानकर अपने नित्य के जीवन में शामिल कर लिया है।

'मनही जीवन का निर्माणकर्त्ता है'—इस कहावत की वास्तविकता को हम जितना ही हृदयङ्गम करते हैं, उतनाही उत्तम एवं श्रेयस्कर वातावरण हमारे लिये उत्पन्न होता है। विपरीत इसके यदि हमारा मन

अपरिष्कृत एवं काम, क्रोध, मोहादि की तरफ प्रवाहित होने वाला है तो हमारे हृदय में वेदना एवं अशान्ति उत्पन्न होगी, जीवन दुःखमय बनेगा और आत्मा को किसी तरह का प्रसन्नात्मक अनुभूति करने का शुभअवसर नहीं मिलेगा।

एक जलधारा किसी पहाड़ी से नीचे गिर रही थी। बहुत समय तक उसका क्रम चलता रहा और वह अपने नियम के अनुसार समुद्र में गिरती रही, परन्तु किसी को उसके अन्दर की गुप्त शक्ति का पता नहीं चला। एक दिन एक मनुष्य की दृष्टि उधर गई और उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि यदि जलधारा का नियंत्रण उचित तरीके पर किया जाय तो अवश्य ही उसमें से एक शक्ति उत्पन्न होगी। इस कार्य को उसने सोच समझकर खुद अपने हाथ में लिया। उसने पानी रोकने के लिये एक बाँध बनवाया और उसके एकत्रित होने के लिए तालाब और जल-चक्र तैयार करवाये। उस बुद्धिमान मनुष्य के इस कार्य का परिणाम बड़ा ही आश्चर्यजनक निकला। वह पतली जलधारा यन्त्रों की सहायता से एक शक्ति के रूप में परिवर्तित हो गई

और उससे आटा पीसा जाने लगा, उसका पानी बड़े बड़े तालावों में जमा होने के कारण पीने के काम में आने लगा। उससे बिजली की शक्ति प्राप्त की गई जिससे प्रकाश द्वारा नगरों एवं मार्गों के अन्धकार का नाश हुआ और उनकी शोभा बढ़ गयी। ऐसा क्यों हुआ? एक मनुष्य ने अपनी विचार-शक्ति का ठीक ठीक उपयोग किया—इसलिये।

हजारों मनुष्यों की दृष्टि उस जलधारा पर पड़ी होगी, पर उसका कोई नतीजा नहीं निकला। अन्त में एक मनुष्य ऐसा आया, जिसकी दृष्टि उधर गई और उसके हृदय में अनेकों तरह के विचार उत्पन्न हुये। उसने उसकी आन्तरिक शक्ति का अन्वेषण किया, उसके उपयोग एवं तज्जन्य नतीजे को देखा और सोचा कि संसार में ऐसी बहुत सी सम्भावनायें हैं जो इस बात की प्रतिक्षा कर रही हैं कि किसी की निगाह उसपर पड़े। अंत में उस मनुष्य के हृदय-पटल पर मानसिक विचारों द्वारा एक रूप-रेखा खिंच उठी, आगे चलकर वही असली चित्र के रूपमें बदल गई और उससे काम लिया जाने लगा।

\ इसी जलधारा की तरह हमारी मानसिक शक्तियों का प्रवाह भी बहुत दिनों से नष्ट होता चला आ रहा है और हम उसके गर्भ में पड़ी हुई विचार-शक्ति की महती शक्ति का पता लगाने में असमर्थ हो रहें है। परन्तु सौभाग्य से लोगों का ध्यान अब इधर आकर्षित होने लगा है। वे, ज्ञान की खोज करने एवं आत्म-निरीक्षण के महत्व को समझने लगे हैं और जीवन को प्रमुदित तथा आलोकित करने वाले पवित्र साधनों की प्राप्ति में प्रयत्नशील भी हुये हैं।

वे जीवनरूपी समुद्र में उस लकड़ी के टुकड़े की तरह नहीं पड़े हैं जिसे भाग्य और परिस्थितिरूपी तरंगें जिधर चाहें उधर बहा ले जाँय। वे अपनी सारी परिस्थितियों एवं भाग्य के निर्माता खुद हैं। उन्हें अपनी विचार-धारा पर पूरा नियंत्रण है और वे अपनी प्रवृत्तियों को जिस रूप में जैसा चाहें परिवर्तित कर सकते हैं। वे अपनी विचार-शक्तियों को व्यर्थ नष्ट होने से बचाते और उसे किसी सुन्दरतम मार्ग की तरफ झुकाते हैं। जीवन-निर्माण का रहस्य उनकी समझ में आगया है और उनके अन्दर एक ऐसी शक्ति का प्रदुर्भाव हो गया

है—जिसका उन्हें अनुभव हो रहा है और वे भलिभाँति समझ रहे हैं कि इसी शक्ति का ठीक २ संचालन करना ही उत्कृष्ट गुणों, सारे सुखों एवं सम्पदाओं को प्राप्त करने का साधन है।

अहा ! जब किसी मनुष्यको उपयुक्त कथन की वास्तविकता का पता लग जाता है तो उसके जीवन में कैसे विचित्र आनन्द का प्रसार होता है। हम यह समझकर कितनी प्रसन्नताका ,अनुभव करते हैं कि हमारा जीवन उसी तरह समृद्धशाली एवं सम्पन्न बन सकता है जितना कि दूसरों का। हमारी आखें खुल जाती हैं और हमे यह साफ साफ मालूम होने लगता है कि वस्तुतः हमारा जीवन इसीलिये निम्नतर था कि हमारे अन्दर जितनी कल्याणकारी विचार-तरंगे तेजी से आती थीं उन्हें हम यों ही चले जाने देते थे और उन्हें ग्रहण नहीं करते थे। हमारी आखे मुर्दा हुई थीं—जिसकी वजह से हम इसे देख नहीं पाते थे। यह तो हमें अच्छी तरह मालूम है कि सूर्य्य की संवञ्जीवनी रश्मियों को हम उसी तरह स्वच्छन्दरूप से काम में ला सकते हैं जिसतरह कोई और दूसरा मनुष्य। हमें यह भी विदित

है कि सूर्य्य की किरणें सबके लिये हैं और उनसे कोई भी जितनी चाहे उतनी गरमी तथा रोशनी ले सकता है। जिस हवा से हम साँस लेते हैं, जिसके बिना हमारा एक क्षण का जीना भी कठिन है वह कहाँ से आता है—इसे भी हम एक मामूली विषय समझते हैं और उसपर स्वप्न में भी विचार करने की आवश्यकता नहीं समझते। हमें पर्याप्त रूप में हवा मिल जाती है अतएव इसपर गहरा विचार करना हम निरर्थक समझते हैं, इसी तरह हम हमेशा खाना खाते हैं, पानी पीते हैं परन्तु खाने और पीने की कमी का अनुमान हम शायद ही कभी करते हों। हम जानते हैं कि सूर्य्य की किरणों में वायु, भोजन और पानी आधिकता से मिला हुआ है—इस विषय में सोच विचार एवं चिन्ता करने की जरूरत ही क्या है !

अहा ! अगर हम यह समझने के अलावा कि जितनी चाहें उतनी हवा ले सकते हैं, अपरिमित सूर्य्य की किरणों को काम में ला सकते हैं, भोजन और जल प्राप्त कर सकते हैं, हम यह भी समझने लगें कि इसी तरह और इतनी ही मात्रा में हम अत्यधिक कल्याण

एवं वैभव के अधिकारी हैं तो हमें कैसी असीम प्रसन्नता हो।

हमारी आत्मा जिसे चाह रही है, हमारा हृदय जिसके लिये तड़प रहा है, हमारे हाथ जिसके लिये हाथ बढ़ा रहें हैं और जिसे हमने अपना लक्ष्य बना रक्खा है वह हमें मिलेगी और अवश्य मिलेगी, संसार की कोई भी शक्ति उसे रोक नहीं सकती। वह हमें प्राप्त होगी, आपको प्राप्त होगी और सबको प्राप्त होगी। यदि हममें उत्साह उद्योग सत्य एवं गम्भीरता है तो वह वस्तु हमारे जीवन में प्रत्यक्षरूप से दृष्टिगोचर होने लगेगी।

"यदि तुम सच्चे अन्तःकरण एवं मुझीमे रत होकर मुझे खोज रहे हो तो तुम्हें मेरी प्राप्ति अवश्य होगी।"

विचार ही रसायन है

यदि सच पूछा जाय तो संसार में प्रत्येक कार्यों को सम्पादित करने की दृष्टि से सबसे प्रबल शक्ति विचार-शक्ति ही है। विचारों पर ही हमारी उन्नति एवं अवनति निर्भर है। लोगों का ऐसा ख्याल है कि शक्तिशाली व्यक्तियों का आश्रय ग्रहण करने और उन्हीं के सहवास में रहने से ही मनुष्यका आदर सम्मान हो सकता है, मगर यह बात यथार्थ नहीं। हमने जो कुछ उन्नति की है, और हमारे अन्दर जितनी सच्ची शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ है वह सब हमारे ही विचारों का परिणाम है।

"मनुष्य का रूप उसके विचारों का प्रतिबिम्ब है" करोड़ों वर्ष पूर्व किसी विद्वान ने ऐसा कहा था। खेद है कि इतना लम्बा समय व्यतीत होगया और लोगों को इस ज्वलन्त सत्य का ज्ञान अभी तक नहीं हुआ। अपने सुख दुःख को परिस्थिति अथवा अन्य किसी कल्पित शक्ति का कारण मानकर उनलोगों ने अपना बहुत सा समय नष्ट कर दिया। उनके जीवन में जो कुछ कमी हुई उसके लिये उनलोगों ने कभी किसी मनुष्य को दोषी ठहराया और कभी किसी वस्तुको। वे हमेशा अपने अभाव के कारणों को अन्दर न खोजकर बाहर ही खोजते और भटकते रहे। उन्हें इस बात का पता नहीं लगा कि वास्तव मे हमीं ने ही अपने सुखों एवं दु.खों का निर्माण किया है।

ज्ञानी वही है जो प्रतिक्षण आत्म-निरीक्षण करता रहता हो। विषयों के चिन्तन से राग की, राग से इच्छाकी इच्छा से द्वेष की और द्वेप से अविवेक की प्राप्ति होती है। अविवेक में पड़ जाने से बुद्धि के उन्नत-स्वरूप का आभास जाता रहता है, फलस्वरूप मनुष्य मोह-ग्रस्त हो-कर पतन को प्राप्त होता है।

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
संङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति समोहः समोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धि नाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

अगर कोई मनुष्य मूर्ख अविश्वसनीय एवं तुच्छ है तो वह अपने विचारों ही के कारण ऐसा बना है। यदि कोई मनुष्य निर्बल और संकीर्ण विचार का है तो वह भी उसके ओछे विचार का ही परिणाम है। किसी भी दिन, किसी भी जगह यदि तुम स्त्री-पुरुषों के मुख मण्डल को देखो और परिक्षा करो तो तुम्हें भली भाँति विदित हो जायगा और यह बात स्पष्ट हो जायगी कि उनके मुख-मण्डल पर विचारों की कितनी शृङ्खलाये नित्यप्रति उठा करती हैं।

यदि किसी का चेहरा भाव-शून्य है तो इसका मतलब यह है कि उसके मस्तिष्क में अनेकानेक उद्देश-हीन एवं व्यर्थ तरंगे ग्रीष्मकालके बादलों की तरह उठती और विलीन हुआ करती हैं। किसी भी विचार को उसके मस्तिष्क में क्षण भर से अधिक ठहरने की जगह नहीं है और उसके मस्तिष्क का द्वार ऐसे ही क्षणभंगुर

विचारों के आने जाने के लिये खुला हुआ है।

अब दूसरो तरफ आइये। किसी का मुख तेजहीन एवं विलासप्रिय दिखलाई दे रहा है। यद्यपि यह भी मनुष्य ही का मुखमण्डल है-इसमें आभा होनी चाहिये और तेज भी, मगर ऐसा नहीं है। क्यों ? इसलिये कि उसके मानसिक-विचार व्यसनों और वासनाओं से ओत प्रोत हैं और वे मस्तिष्क में बैठकर अपनी झलक बाहर दिखला रहे हैं।

शायद आप यह कहें कि हो सकता है कि इस परीक्षा में धोखा हो जाय, मगर मेरे अनुमान से ऐसा कदापि सम्भव नहीं। जिसके विचार पवित्र हैं उसके चेहरे पर धूर्तता का प्रतिबिम्ब कभी पड़ ही नहीं सकता। प्रकृति मे भूल कभी नही हो सकती। हमें अपने कर्मों का फल कौड़ी २ बिना भोगे हुये छुट्टी नहीं।

क्या ही अच्छा हो यदि लोग अपनी स्थिति से परिचित हो जायँ। क्या ही अच्छा हो यदि कोई मनुष्य अनुरोधपूर्वक यह कहे कि तुम्हारे पास एक ऐसा रसायन है जिसका उपयोग कर तुम अपनी समस्त बुराइयों को अच्छाइयों के रूप में बदल सकते हो—यदि चाहो तो।

पर क्या ऐसा हो सकता है ? यदि किसी ने ऐसा किया भी तो लोग उसको शायद पागल कहेंगे । तो भी मनुष्य को चाहिये कि वह उपर्युक्त सत्य की वास्तविकता पर विचार करे । मनुष्य में एक अलौकिक एवं अद्भुत शक्ति मौजूद है—मगर खेद है कि वह इसे नहीं जानता ।

चारों तरफ "यह करो, वह करो" की आवाज़ हमारे कानों में पड़ रही है । अनेकों तरह के पुण्यके मार्ग दिखलाये जा रहे हैं, नये नये उपदेश पढ़ने और सुनने को मिल रहे हैं, मन्दिरों, मठों एवं अन्य धार्मिक संस्थाओं की भी ज्ञान-वृद्धि विषयक अनेकानेक युक्तियां बराबर सुनने में आ रही हैं, मगर हम उस बहुमूल्य रत्नके विषयमें एक भी शब्द नहीं सुन रहे हैं जो हमारे दृष्टिपातकी प्रतीक्षा में हमारे अन्दर बैठा हुआ है ।

आज जो सङ्घर्ष चल रहा है, अशान्ति फैली हुई है, इससे मालूम हो रहा है कि अबतक जो कुछ सधारण उप-देश दिये गये थे-उनका असर जनसमुदाय पर कम पड़ा । मेरे विचार से यदि ऐसे समय में कोई धर्माचार्य अथवा कोई सत्याग्रही यह उपदेश दे कि "घर जावो और विचार करो" तो अत्युत्तम शिक्षा हो । शायद इस उपदेशासे महान परिवर्तन होगा ।

इतना ही नहीं; लोगों को यहभी बतलाना आवश्यक होगा कि विचार करने की रीति क्या है। वस्तुतः इसकी विधि तो सहज है, पर प्रयोग कठिन है और कभीतो उनमें इतनी दुरूहता आ जाती है कि जिसका निवारण करना मुश्किल होजाता है।

पता नहीं, लोगों की समझ में यह बात कब आयेगी कि दुःखसे छुटकारा कर्म करने से नहीं हो सकता, किन्तु आत्माकी उन्नति करनेसे ही हो सकता है और विचार करना ही आत्मोन्नति करना है। हमारी आत्मोन्नति के साधन हमारे विचारही हैं।

कोई भी पुरुष अपने विचारों द्वारा अपने को जिस साँचे में चाहे ढाल सकता है। तरकीव बहुत आसान है, किन्तु समयके अपरिमित विस्तार में इसकी गति बहुत लंबी है और इससे उत्पन्न होनेवाले फलभी बहुतेरे हैं। चाहे कोई भी विषय क्यों न हो, यदि तुम गम्भीरता-पूर्वक उनका चिन्तन करने लगते हो तो तुम्हारे मस्तिष्क में उसी तरह के विचारों के लिये स्थान खाली हो जाता है। अब यदि वह विचार पापपूर्ण एवं त्याज्य है तो तुम्हें उस विचार को हटाने और वह स्थान खाली करने मे

अवश्यही कठिनाई का सामन करना पड़ेगा। तुम्हारे मन में जिन जिन विचारों की उत्पत्ति होगी, वे लोहे की जंजीर के समान तुम्हें बांधते जायँगे। यदि तुम्हारे विचार ओछे हैं तो तुम स्वयं भी अपने विचरों के समान ओछे बन जाओगे। तुम उससे बच नहीं सकते। मगर यदि तुम्हारे विचार पवित्र हैं, आकांक्षाये निर्मल हैं तो समझ रक्खो कि तुम खुद भी पवित्र और उदार हृदय के बन जाओगे। "मनुष्य स्वयं वैसा ही है जैसे उसके हृदय के विचार हैं"।

महात्मा ईसाने कहा है:—

"धन्य हैं वे जिनका हृदय पवित्र है क्योंकि ऐसे को परमात्मा के दर्शन होंगे।"

हर एक मनुष्य के जीवन के इतिहास में बड़े २ अक्षरों में यह सिद्धान्त अङ्कित किया जा सकता है कि "मेरा जीवन मेरे विचारों का ही फल है।"

उपर्युक्त बातों का हृदयङ्गम कर लेना ही वस्तुतः सुखी होना है।
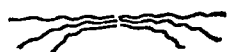
अभिलाषा

हम जो कुछ विचार करें, उसके मूल में अभिलाषा होना बहुत जरूरी है। हम उसी विषय में सोचते हैं, विचार करते हैं जिसके लिये हमारे मन में इच्छा होती है। जब कभी हमारे दिल में किसी चीज के प्राप्त करने की अभिलाषा होती है—और वह कसौटी पर कसी जाती है-तो प्रायः खरी नही उतरती। इसी तरह हम जान लेते हैं कि हम किसी आदर्श-प्राप्ति के लिये उद्योग तो करते हैं, मगर परीक्षा करने पर यह मालूम हो जाता है कि उसमें सच्ची लगन का अभाव

रहता है। यदि हमारे हृदय से उस वस्तु की प्राप्ति की कामना हट जाय तो हमें कोई हिचकिचाहट नहीं होती और हम विवश होकर बैठ जाते हैं। इस तरह की अभिलाषा जीवन-निर्माण में कदापि सहायक नहीं हो सकती। ऐसी इच्छा को इच्छा न समझ कर मनकी एक उमङ्गमात्र समझना चाहिये। उसके उत्पन्न होने में जितना समय लगा है—नष्ट होने में भी उतना ही समय लगता है। ऐसी अभिलाषा का प्रभाव मस्तिष्क पर बहुत बुरा पड़ता है, कार्य करने की शक्ति क्षीण होने लगती है और हमारा मस्तिष्क थोड़े ही समय में उस कार्य के अयोग्य हो जाता है, जो हमें करना है। यदि हम चाहते हैं कि हमारी मानसिक शक्तियां प्रबल हो जांय, यदि हम चाहते हैं कि हमारा जीवन सार-हीन एवं निरर्थक न बने तो हमारा यह कर्त्तव्य होगा कि हम अपने मन में क्षणक्षण पर उठने वाली भावनाओं को रोकें, ऐसे विचारों को उसमें कदापि प्रविष्ट न होने दें जो कि अस्पष्ट एवं उद्देशहीन हैं।

प्रत्येक ऐसी इच्छा से, जो हमारे मन में हमारी मोह-मयी प्रवृत्तियों की वजह से कुछ समय तक रहती हैं और

फिर अपनी ही तरह एक दूसरी इच्छा के लिये स्थान खाली करके नष्ट हो जाती हैं, हमारी शक्तियों एवं स्फूर्तियों का नाश होता है। चाहे एक सप्ताह हो, चाहे महीना भर हो और चाहे एक वर्ष हो, पर जितनी ही अधिक ऐसी अधूरी इच्छा हमारे मन में टिकेगी, उतनी ही मात्रा में हमारी शक्ति का नाश होगा और यदि ऐसी इच्छायें हमारे मन में सर्वदा आती रहीं तो निश्चय समझ लेना चाहिये कि हमारे मन में किसी लक्ष्य को स्थिर करने और उस कार्य को सफलीभूत बनाने की शक्ति कदापि नहीं रह सकती।

जिसका मन चंचल है वह हवा के वेग से टकराती हुई समुद्र की लहरों की तरह इधर उधर टकराया करता है। जिसके मन मे स्थिरता नहीं—किसी कार्य्य में दृढ़ता नहीं, उसकी इच्छा की पूर्ति किसी भी हालत में और कभी भी नहीं हो सकती।

चित्त के स्थिर न रहने का मतलब यह है कि आज एक इच्छा के वश होकर यह कार्य कर रहे हैं और कल दूसरी इच्छा के वश होकर वह कार्य। ऐसे मनुष्य चाहे वे स्त्री हों अथवा पुरुष, अपनी ही इच्छा

से उस नौका के समान बना है जो समुद्र के विस्तीर्ण वक्षस्थल पर प्रवाहित हो रही है और हवा के प्रबल झोंके उसे अपने रुख के अनुसार जिधर चाहते हैं उधर बहा ले जाते हैं। ऐसे मनुष्य को यह कदापि न सोचना चाहिये कि वह अपने उद्देश्य की पूर्त्ति में सफल हो सकता है।

एक तरह की इच्छा वह है जिसके गर्भ में निराशा छिपी रहती है। यद्यपि ऐसी इच्छा, सत्य और गम्भीर हो सकती है परन्तु उसका परिणाम हमेशा निराश-जनकही हुआ करता है।

कुछ समय पहले मुझे एक ऐसा मनुष्य मिला था जिसका कथन था कि 'यह वस्तु मैं हृदय से चाहता हूँ और यदि यह मुझे प्राप्त हो जायगी तो मैं अपने जीवन को सार्थक और सब तरह से परिपूर्ण समझूंगा।' परन्तु उस वस्तु की प्राप्ति में जिन २ नियमों की आवश्यकता थी, वे उसे स्वीकार नहीं थे। इस तरह उसकी इच्छा के साथ निराशा चिपकी हुई थी और वह संतप्त होकर कहा करता था कि "हाय २ करने से चन्द्रमा नहीं प्राप्त हो सकता"। तात्पर्य यह कि जिस वस्तु के

मिलने की सम्भावना नहीं, उसके लिये पश्चात्ताप करना और दुःखी होना व्यर्थ है। ऐसी इच्छा का परिणाम कुछ नही निकलता और न वह कभी फलवती ही हो सकती है। कारण, उसके विश्वास का अभाव उसकी शक्तियों को क्षीण कर देता है और उसके मन में यह बात बैठ जाती है कि किसी अभिष्ट वस्तु के पाने की इच्छा करना और उसके लिये कठिन प्रयत्न करना असम्भव है। किसी वस्तु की इच्छा करने का मतलब मेरा यह है कि ऐसी इच्छा जो हमारे जीवन को सुखी, सुचारु एवं सुव्यवस्थित बनाने में सहायक हो। किसी वस्तु की इच्छा होने से हमारा तात्पर्य है कि ऐसी इच्छा जिससे हमारा हृदय किसी उच्चतर एवं उत्तम वस्तु की तरफ आकृष्ट हो और हम किसी निर्दिष्ट लक्ष्यकी प्राप्ति के लिये व्याकुल हो उठें। मैं पूछता हूँ, क्या तुम ऐसी इच्छाओं के मनमें उत्पन्न होने से बैठे रह सकते हो? हरगिज नहीं। तुम्हारा तो सारा जीवनही कर्ममय हो जायगा—यह निश्चित है। तुम्हारे पास जितनी मानसिक-शक्तियाँ और साधन हैं, उनका उपयोग करने के लिये तुम वाध्य हो जाओगे, तुम्हारे अन्दर से चुपचाप बैठे

रहने और निष्प्रयत्न सुखी होने की भावना का लोप हो जायगा और तुम कार्य करने के लिये मैदान में डटकर खड़े हो जाओगे। समझ रक्खो और इसे अक्षरशः सत्य समझो कि तुम कदापि असफल नहीं हो सकते।

मुझसे पूछा जाता है कि यदि हमारे हृदय में किसी ऐसी वस्तुकी इच्छा हो जाय जो हमारे लिये वस्तुतः श्रेयस्कर नहीं, तो मेरा कथन यह है कि पहले तुम अपनी उस इच्छा की पूर्ति कर लो जो तुम चाहते हो और बाद को इस बात का अनुभव करो कि वास्तवमें वह वस्तु कल्याणकारी है अथवा नहीं। यदि तुम्हारी इच्छित वस्तु तुम्हें न प्राप्त हो सकी—और तुम्हारे दिल में उसके लिये हार्दिक प्रेम था तो यह बात तुम्हें हमेशा कोसा करेगी और तुम वार वार दुखित होकर यही सोचा करोगे कि "हाय! यदि वह वस्तु मुझे मिल गई होती तो मेरा जीवन सफल और पूर्णतः सुखी हो जाता।"

कल्पना करो एक ऐसा मनुष्य है-जिसे धनसंग्रह की बड़ी अभिलाषा है और वही उसका ध्येय है। वह चाहता है कि संसार की सम्पत्तियां मुझे मिलें और मै दूसरों की अपेक्षा धनी होऊँ। आखिर में जब उ-

सकी मनोकामना पूरी हो जाती है और वह एक लाख का मालिक हो जाता है तो उसके ध्यान में यह बात आ जाती है कि उसके पश्चात्ताप और हाय हाय करने का वैसा परिणाम नहीं निकला जैसा कि वह चाहता था। उसे अब साफ २ मालूम हो जाता है कि वस्तुतः उसने जिस वस्तुको अपना लक्ष्य बनाया था—जिसकी प्राप्ति के अनन्तर वह महती सुख के अनुभव करने की आशा किये था, वह वस्तु उसके अन्तःकरण में संतोष और सुख का कारण न बन सकी और विपरीत इसके क्लेश-दायक एवं अशान्तिमय समझ पड़ी। तब उसका ध्यान इस धन से हटकर उस अतुल धन की तरफ आ-कर्षित होगा जिसके प्राप्त होने के अनन्तर कुछ पाना बाकी नहीं रह जाता।

"तद्धाम परमं पदं"

अतएव सबसे पहला और बहुतही आवश्यक कर्त्तव्य हमारा यह है कि हम ज्ञान-प्राप्ति की अभिलाषा करें जिससे हम उसी वस्तु का चिन्तन करें जो हमारे लिये श्रेयस्कर है। 'महापुरुष ईसा का वचन है कि परमपिता परमात्मा की शरण में जाओ और उनके दिव्य गुणोंको

चिन्तन करो, उनके प्रसाद की कामना करो और तब तुम्हें सम्पूर्ण वस्तुयें अपने आप मिलेगी।

उनकी इस अमूल्य शिक्षाको हृदयङ्गम करना और उसपर अमल करना हमारे लिये एक सर्वोत्कृष्ट साधन है। भगवान के शरणागत हो जाने पर मनुष्य जिस वस्तु की चिन्तना करेगा, यह मानी बात है कि वह उत्तम एवं कल्याण-प्रद होगी। ऐसी सूरतमें हम अपने विचारों की उत्पादन-शक्ति का उपयोग उसी चीज़ को पाने के लिये करेंगे जो औरों के लिये लाभप्रद एवं हमारे जीवन को सफल बनाने के लिये अत्यन्त उपयोगी होगी। इसी गहरे अभिप्राय से महात्मा ईसा ने कहा था कि सर्वोत्कृष्ट गुणों के पाने के लिये हमेशा लालायित रहो।

"भाइयो! यदि तुम गुण और यश की प्राप्ति चाहते हो तो उन समस्त वस्तुओं का चिन्तन करो जिनमें सत्य, शील, न्याय, पवित्रता प्रेम एवं उत्तम ज्ञान के दर्शन होते हैं।"

तुम क्या होना चाहते हो?

सभी धर्मों का यह निर्विवाद मत है कि हमेशा धर्म की जीत होती है, धर्मात्मा सुखी होता है और ईश्वर की कृपा से भले मनुष्यों की मनोकामनायें पूरी होती हैं। परन्तु यदि सच पूछा जाय तो हमें इन बातों पर सच सच विश्वास नहीं और इसी वजह से हमारे अन्दर संताप और दुःख का दौरदौरा रहा करता है। यह आश्चर्य्य ही तो है कि हम परम दयालु और जगन्नियन्ता का सहारा पाकर भी दुखी

और त्रस्त रहें। कुछ लोगों का तो कथन यह है कि यदि संसार से उदासीन रहे और अपने जीवन को कष्टमय बितावे—तो उसे सत्य का दर्शन हो सकता है। इन लोगों के ख्याल से दारिद्र्य और दुःख भगवान का प्रसाद है और सुख एवं सम्पत्ति कल्याण-मार्ग का बाधक। जबतक मनुष्य इनका परित्याग नहीं करता, ईश्वर के समीप पहुँचही नहीं सकता। मगर ऐसा ख्याल करने वाले मनुष्य गलती पर हैं। भला आपही बतलाइये जबकि हमारे मन में प्रेम, शिक्षा, मित्रता इत्यादि गुणों के विचार नहीं उठ रहे हैं, हमारा शरीर रोगों का घर बना हुआ है, हम भूख से तड़प रहे हैं और हमारा जीवन अकर्मण्य बना हुआ है तो हमें किस-प्रकार मानसिक-शान्ति प्राप्त हो सकती है? जब मन ही नहीं शान्त है तो हमारा जीवन किस तरह सुन्दर हो सकता है? अतः हमें इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि हमारा जीवन सुखी और समृद्धशाली हो। भूलकर भी हमारे पास निराशा, उदासीनता और निरुत्साहता पास न आने पावे।

अब विचार कीजिये कि आप कैसा जीवन बिता-

ना चाहते हैं ? किन २ बातों की कमी आप अपने जीवन में महसूस करते हैं और वह कौन सी बात है जो आपके जीवन को उत्साहमय एवं पूर्ण बनाने में आवश्यक समझ पड़ रही है। यदि आप समाज के एक उपयोगी और शक्तिशाली सदस्य बन जायँ तो क्या उपर्युक्त समस्या हल हो जायगी ? हां, हल हो जायगी और अच्छी तरह हल होजायगी। परमात्मा के दर्बार में पक्षपात नहीं होता। उसकी दृष्टि में सब बराबर हैं। सूर्य का प्रकाश वह सभी प्राणियों को बराबर देता है। पापी और पुण्यात्मा दोनों बादल का पवित्र जल पाते हैं। कहने का मतलब यह कि ईश्वर की दी हुई जितनी वस्तुयें हैं वे सभीको बराबर बराबर मिलती हैं, किसीको कम और किसी को ज्यादा नहीं। भास्कर की किरणों का प्रकाश झोंपड़ो से लेकर राजमहल तक पड़ता है, वर्षा का जल निर्धन और धनी के यहां एकसा बरसता है। ईश्वर अखिल विश्व को एकही निगाह से देखता है। यह विचार कि "अमुक छोटा है और अमुक बड़ा" मनुष्य के ही विकृत मस्तिष्क में उत्पन्न हुआ है।

हमें इस गुण को हासिल करने का अधिकार नहीं हैं, यह धारणा-थोथी, काल्पनिक एवं निराधार है।

आप स्थिर होकर सोचिये और इस बात का पता लगाइये कि वह कौन सी बात है—जिसके द्वारा आपका जीवन पूर्ण बन सकता है। निश्चय समझिये, उस बात का पता लगेगा और उसके पूरे भेद को समझे बिना आप न रहेंगे। वह बात यह है:-"ईश्वर को धन्यवाद देते हुये अपने अन्दर इस बात का पक्का विश्वास कर लेना कि सारे वांछित गुण हमारे अन्दर आ रहे हैं" और इसी की आपको आवश्यकता है, बस! प्रसन्नतापूर्वक आप इस विश्वास को अटल रक्खें और कार्य-क्षेत्र में अग्रसर हों। अल्प कालही में वे गुण आपके अन्दर समाविष्ट हो जायेंगे और आप देखेंगे कि कितनी सुगमता के साथ वे आपके व्यवहारिक जीवन के अंग बन गये हैं।

मेरा तो ख्याल है कि यदि आप उपरोक्त दृष्टि के अनुसार विचार करेंगे तो अपने को सभी गुणों और और विशेषताओं का अधिकारी पावेंगे। जबतक आप स्वयं अपने को—हठपूर्वक पापी न समझ लेगें तबतक

आप पापी नहीं हैं। यदि आप नीचता और दरिद्रता को जानबूझकर नहीं अपनाते तो आप नीच और दरिद्र कदापि नहीं हो सकते। कारण, सुखी अथवा दुःखी होने का सारा स्वाभाविक अधिकार केवल आप ही पर है।

यदि किसी में आनन्द और शक्ति की कमी है तो इसका यह मतलब नहीं है कि वह ईश्वरभक्त नहीं है और न उसकी कृपा का अधिकारी। चूँकि उसके विचार अनुदार एवं उसकी कल्पनायें अनुचित हैं—इसलिये वह वैसा बना हुआ है। मनुष्य के विचारही उसे पतित बनाते हैं और पुण्यवान भी। आइये! हमलोग ऐसी निराशा, निर्बलता और दुःखमय विचारों को छोड़कर, ज्ञान, सत्य, आनन्द, सौख्य, सफलता एवं ऐसे ही अन्यान्य सद्गुणों का चिन्तन करें।

विचार पर परिस्थितियों का प्रभाव

निस्सन्देह हमारे जीवन पर परिस्थितियों का गहरा प्रभाव पड़ता है और उससे हमारे जीवन के सुख और दुःखका किसी अंश तक निर्माण होता है, तोभी इसपर दो भिन्न तरीकों से विचार किया जा सकता है। बहुत से लोगों का ऐसा ख्याल है कि वे स्वयम् तथा दूसरे लोग भी परिस्थितियों के वश में हैं। जब उनकी दृष्टि ऐसे मनुष्यों पर पड़ती है जो निर्धन हैं, मदिरा पीते हैं, जुआ खेलते हैं अथवा अन्य बुराइयों में लिप्त हैं और यह भी देखते हैं कि ऐसे मनुष्य

दूषित स्थानों में रहा करते हैं तो वे सारे दोषकी जिम्मेदारी परिस्थितियों के मत्थे मढ़ देते हैं। उनका कहना यह है कि "भला ऐसे लोग कब तक और कैसे अच्छे रह सकते हैं—जिन्हें नित्यप्रति बुरी परिस्थितियों में रहना पड़ता है। जिस मकान में वे रहते हैं वह गन्दा, जिस सड़क पर चलते हैं वह गन्दी और जिस वातावरण में रहते है वह दूषित, तो बेचारे करे क्या ? और कैसे अच्छा बने ?" इस तरह की बातें करते हुए मैंने एक मनुष्य को अब से कुछ ही पूर्व सुना था। जो लोग ऐसा कहते हैं वे यह भूल जाया करते हैं कि उस मनुष्य ने खुदही उस परिस्थिति में रहना पसन्द किया है और उसे अपनाया है। बुरी संगति, निर्धनता और मलीनता उसकी परिस्थिति का परिणाम नहीं है। विपरीत इसके उसकी परिस्थिति ही उसके विचारों और कर्मों का फल है। आप किसी भी नगर में जाकर और घूमकर इसकी वास्तविकता का पता लगा सकते हैं। थोड़ी देर के लिये आप मानिये कि एक मनुष्य शराब पीता है। अब यदि वह अपने इस अवगुण को छोड़ दे तो नतीजा क्या होगा ? नतीजा यह होगा कि वह सुबह उठकर अपने

काम में लग जायगा और उसका चित्त प्रफुल्लित हो जायगा, उसके मनमें दृढ़ता होगी और हृदय में उत्साह आऐगा। फलतः वह अपने परिवारवालों के लिये भी उत्तम हो जायगा और उनके दुख सुख का ध्यान रखने लगेगा। अब बतलाइये परिस्थिति की शक्ति कहाँ गई ? थोड़े ही समय के बाद उस मनुष्य की दशा से यह विदित हो गया कि वह परिस्थिति की सीमा से बिल्कुल बाहर है। अब उसका शरीर और मन सुखी हो गया है और उसे अपनी प्राचीन गन्दी आदतें भूल गई हैं तथा उन मित्रों का भी साथ जाता रहा है जो उसे उस कार्य में मदद दिया करते थे। इतनाही नहीं उस मनुष्य की परिस्थिति भी उसके नये और पवित्र जीवन के अनुकूल हो गई है। इस तरह उसने अपने ऊपर विजय प्राप्त करने के साथ ही साथ अपनी परिस्थितियों पर भी विजय प्राप्त कर लिया है।

कोई पवित्र मनुष्य गन्दे वातावरण में, कोई सदाचारी दुराचारपूर्ण वातावरण में और मेहनती तथा सच्चा आदमी निन्दनीय तथा असत्यमय वातावरण में रह नहीं सकता। ऐसा होना नितान्त असम्भव है। यदि

आप किसी ऐसे मनुष्य को जिसे अपनी परिस्थितियों के बाहर जाना पसन्द नहीं है ले जायँ तो ले जा सकते हैं, मगर इसका नतीजा यह होगा कि वह मनुष्य जहां जायगा वहां भी अपने ही अनुकूल वातावरण उत्पन्न करने लगेगा।

अतएव मनुष्य को स्वयं अपने को परिवर्तित करना चाहिए। वातावरण तो खुद परिवर्तित हो जाता है।

इस वातावरण-समस्या को हम एक पहलू से विचार करते हैं। कभी कभी हमें ऐसे मनुष्य भी वातावरण की शिकायत करते हुए मिलते हैं जो वस्तुतः शिक्षित हैं, जिनके मित्र अच्छे हैं तथा जिनका कार्यक्षेत्र भी संतोषजनक है। तोभी उनका ख्याल है कि जो स्थान उन्हें मिलना चाहिए वस्तुतः उन्हें नहीं मिला है, न तो उनके अनुकूल उनका वातावरण ही है और न उनकी रुचि के मुताबिक उनका कार्य हो, यही कारण है वह कार्य उन्हें पसन्द नहीं। उनके मनमें यह बात समाई रहती है कि जो काम मैं करना चाहता हूँ वह भी इसलिये नहीं कर रहा हूँ कि मेरा वातावरण ठीक नहीं है। ऐसेही एक मनुष्य का एक पत्र मुझे मिला, उसमें लिखा था—"दूसरों को अच्छे अच्छे कार्य मिले, उनकी

उन्नति हुई और सुअवसर मिले, पर मुझे कुछ न मिला, बरसों से अपना काम यद्यपि मैं करता आ रहा हूँ, पर मुझे यह पसन्द नहीं है।"

'यह काम मुझे पसन्द नहीं है' उस मनुष्य की सारी असफलता का रहस्य इसी छोटे से वाक्य के अन्दर छिपा हुआ है। मैंने उसे लिखा "आपके वर्त्तमान काम में ही शक्ति और सुन्दर मार्ग दिखलानेवाली शक्तियां मौजूद हैं। आप अपने काम से अरुचि न करें, उस काम से जो जो बातें सम्बन्ध रखती हैं उनसे भी घृणा मत करें, अपने वातावरण को अनुकूल समझें और अपने नित्य के जीवन मे अरुचि न रक्खें। शान्तचित्त होकर एकान्त में बैठकर यह सोचें कि जो काम मैं कर रहा हूँ उसमें मुझे प्रसन्नता क्यों नहीं मिल रही है और उसका क्या उपाय हो सकता है कि मुझे उसमें प्रसन्नता होने लगे।

उस मनुष्य ने मेरी राय मान ली और तदनुकूल कार्य भी करने लगा। थोड़ेही समय में उसे इस कदर फ़ायदा हुआ कि वह आश्चर्य में पड़ गया। वह जिस काम से घृणा करता था और जी चुराता था उसी से अब प्रेम करने लगा। फलस्वरूप उन्हीं कार्यों के अन्दर उसे प्रसन्नता मिलने लगी और उसके जीवन में एक नूतन आनन्द का संचार हो आया। जो वातावरण अब से कई

महीने पूर्व उसके कार्य में रोड़े अटकाता था, आज वह न मालूम कहां चला गया। उसे अपने मित्रों में अनायासही गुण दिखलाई देने लगे जिसका ज्ञान उसे पहले बिल्कुल नहीं था। उसे सुख और शान्ति देने वाली अनेकों सुविधायें सुगमता से प्राप्त हो गईं और उसे अपने लक्ष्य की तरफ ले जाकर सफलता पूर्वक निश्चित स्थान पर पहुँचा देने वाली सुन्दर सड़क मिल गई। इस मनुष्य ने अपना आन्तरिक जगत परिवर्तित कर लिया और फिर उसके लिये सारा संसार परिवर्तित एवं परिष्कृत समझ पड़ने लगा। उसने हमारे पास लिखा—

"मैं अब एक नये साँचे में ढल गया हूँ। आपकी राय मिलने से पूर्व मेरे सामने निराशा और असफलता का घोर अन्धकार चारों तरफ दृष्टिगोचर होता था—आज उसी वातावरण के अन्दर एक विचित्र आनन्द एवं सौन्दर्य प्राप्त हो रहा है।" विचार कीजिए, इस फल का तथ्य क्या था? उस मनुष्य का अन्तःकरण अथवा उसका वातावरण।

सत्य समझिये, यदि आप अपने उस वातावरण में जिसमें कि इस समय मौजूद हैं, उन्नति नहीं कर सकते तो आप के लिये कोई भी वातावरण निरर्थक है और

आपके लिये उन्नति का द्वार वन्द है। ऐसा बहुतेरों का मत है और मेरा भी कि, मनुष्य जिस वातावरण से ऊबकर छुटकारा पाने की कोशिश करता है वस्तुतः उसीके अन्दर सुख और सफलता की पर्याप्त मात्रा मौजूद थी। वाँछित सुख और प्रत्येक सफलता बिल्कुल हमारे पास थी और सामने थी, मगर हमारी दृष्टि उधर गई नहीं थी और हम उसे देखने एवं हस्तगत करने में असमर्थ थे। तुम्हारी वर्तमान स्थिति में ही तुम्हें सुख मिल सकता है। जो काम तुम्हारे हाथ में है—सफलता उसी में मिलेगी। अतएव तुम्हारा कर्त्तव्य यह है कि तुम अपने हाथ में लिये हुए काम को निहायत जिम्मेदारी और परिश्रम के साथ करो। उस समय सभी इच्छायें पूरी हो जाती हैं जब मन पर अधिकार प्राप्त हो जाता है। ऐसे मनुष्य के लिये प्रतिक्षण सुअवसर मिला करता है जिनके अन्दर मुस्तैदी से कार्य करने की क्षमता है।
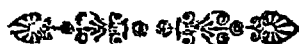
पारस पत्थर

लोगों का ऐसा ख्याल है और यह ख्याल अधिक दिनों से चला आ रहा है कि संसार में कोई ऐसी वस्तु अवश्य है जो लोहे को सोना बना सकती है और हमारे जीवन के दुःखों को क्षणभर में सुख के रूप में बदल दे सकती है। बहुत से लोगों ने भिन्न २ मार्गों से उसका अन्वेषण किया और कितनों ही ने तो अपना सारा जीवन ही उसी में बिता डाला। बहुत से लोगों ने उसे प्राप्त हो जाने की बात भी प्रकट कर दी। सच

पूछिये तो ऐसे मनुष्यों की संख्या अत्यधिक है जिन्होंने अपनी सफलता की घोषणा की है और बहुत से लोगों ने आकर्षित होकर उनका अनुकरण किया है परन्तु अंत में निराशा ही उनके हाथ लगी है। बार २ हताश होने पर वे ऊबे हैं और उसकी खोज की आवश्यकता को भी व्यर्थ समझ लिया है। उनके ध्यान में यह बात अच्छी तरह आ गई कि पारस नाम की कोई वस्तु न तो कभी थी और न है। वस्तुतः यह बात निराधार अथवा किसी के मस्तिष्क की कल्पनात्मक उपज है।

लोगों ने समझने में गलती की है। वह इस जगह कि पारस नाम की कोई चीज़ उन्होंने बाहर खोजा, न कि अपने अन्दर। उन्होंने पारस को एक छू सकने वाली, इधर से उधर ले जाने वाली अथवा अपने पास रखने वाली कोई स्थूल वस्तु समझा। बहुत से लोगों ने पारस को एक बाहरी शक्ति मान ली और उसका सम्बन्ध आत्मा से होना आवश्यक बतलाया। चारों तरफ भिन्न २ दृष्टि-बिन्दुओं से निगाह दौड़ाने के कारण भिन्न भिन्न सम्प्रदायों एवं मतों की उत्पत्ति हुई। फलस्वरूप चारों ओर धूर्त उपदेशकों की बाढ़ आ गई और वे थोड़ी सी दक्षिणा पर ही लोगों को इस गुटिका का रहस्य समझाने लगे।

भोली-भाली जनता उनके द्वारा ठगी गई और उसे सिवाय दुःख और निराशा के कोई वस्तु हाथ न आई।

समझना चाहिये और अच्छी तरह विश्वास करना चाहिए कि पारस नाम की एक गुटिका है—और वह हमारे सारे भ्रमों को दूर कर सकती है। मगर वह किसी उपदेशक अथवा महन्त के द्वारा नहीं मिलती। वह हमारे अन्दर खुद है, हमको मिल सकती है और सबको मिल सकती है—मगर उसके खोजने के लिए ठीक रास्ते पर चलना होगा—गलत रास्ते पर नहीं। अर्थात् उसे बाहर न खोजकर अपने अन्दर खोजना होगा। उसका निवास-स्थान हमारा हृदय और मन है। दूसरे शब्दों में यों कहिए कि वह शक्ति या वह गुटिका हमारे विचारों में सन्निहित है।

यद्यपि मैं विचार-शक्ति पर प्रकाश डाल चुका हूँ फिर भी मुझे संतोष नहीं हो रहा है। इस विषय पर तो चाहे कितना ही लिखा जाय—और जोर दार शब्दों में लिखा जाय मगर थोड़ा ही है।

जब मैं देखता हूँ कि यह शक्ति प्रत्येक मनुष्य के पास है—मगर वे उसे नहीं जानते और जब मैं देखता हूं कि यह अमूल्य रत्न सब के हाथों पर रक्खा हुआ

है परन्तु लोग उसे नहीं देख रहे हैं तो मेरे हृदय में लोगों से बारबार इस बात के कहने की प्रेरणा होती है कि भाइयो ! जिस वस्तु की खोज तुम कर रहे हो वह इस परिवर्तनशील जगत में तुम्हें नहीं मिल सकती—वह वस्तु तुम्हारी विचारशक्ति में मौजूद है। वहीं उसे खोजो।

हमें यह हृदयङ्गम कर लेना चाहिए और इसपर अटल विश्वास कर लेना चाहिए कि हमारा वर्तमान जीवन हमारे भूतकाल के विचार ही हैं। यदि तुम अच्छी तरह इस बात को समझ गये तो निश्चय मानो उस महाशक्ति के प्राप्त करने का साधन तुम पा गये और अब तुम्हें अपनी सफलता में तनिक भी सन्देह नहीं है।

भगवान ने इस विस्तृत मण्डल की रचना विचारों के आधार पर ही की है। जितनी वस्तुयें दिखलाई पड़ रही हैं सब विचारों के ही परिणाम हैं। संसार की प्रत्येक वस्तु का उद्गम विचारही है। जो अच्छी २ इमारतें आज दिखलाई दे रही हैं वे किसी शिल्पकार के मस्तिष्क की उपज हैं। बड़ी २ बाटिकायें, जंगलों एवं अरण्यों का वर्तमान रूप विचार द्वारा ही निर्दिष्ट हुआ है। जलके मनोहर फव्वारे, तरह तरह के पहनने के कपड़े,

बैठने के अनेकों तरह की कुर्सियां अथवा अन्य सामान और हमारे उपयोग में आने वाली अन्याय वस्तुयें हमारे विचार द्वारा हो उत्पन्न हुई हैं । इनके निर्माण करने के पूर्व हमारे हृदय में एक कल्पनात्मक चित्र बना है और तब उसका असली रूप बना है ।

शायद आप कहें कि यह सब तो हमने मान लिया पर अपने जीवन की उन परिस्थितियों को कैसे बदलें—जिनकी वजह से हमपर विपत्तियां आती हैं, निर्धनता भोगनी पड़ती है और अन्यान्य बहुत सी चिन्ताओं एवं कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । उत्तर स्पष्ट है । ये सब बातें भी आप के विचारों के ही फल हैं । बार २ जिन विचारों को हमने अपने अन्दर स्थान दिया है, जिसकी चिन्तना की है, यह उसी का परिणाम है । चाहे हम इस बात को न भी समझते हों, तो भी यह स्पष्ट है कि हमारा जीवन हमारे विचारों का प्रत्यक्ष रूप है । ऐसे बहुत से मनुष्य इसके उदाहरण में पेश किये जा सकते हैं—जिनको बीमार होने का डर हरदम लगा रहता था और वे सचमुच बीमार पड़ गये । इस मौसम में यह परहेज करो और उस मौसम में वह परहेज करो, नहीं तो बीमार पड़

जाओगे—ऐसे ही विचार बीमार पड़नेवालों के मन में आया करते हैं। धूप के निकलते ही वे खिड़कियां बन्द कर लेते हैं ताकि उनको धूप न लगे। वे इसलिये खाने पीने से भी अधिक परहेज़ करते हैं, कि शायद उन्हें कोई वस्तु नुकसान न कर दे। शरीर के अस्वस्थ हो जाने की आशंका से वे न तो व्यायाम करते हैं और न आमोद प्रमोद करते हैं। हर वक्त वे अपने अनिष्ट के परिणाम से बचने की कुछ न कुछ बातें किया करते हैं—जिसका परिणाम यह होता है कि उनके मन में एक तरह का रोग लग जाता है, उत्साह क्षीण हो जाता है और वे सचमुच बीमार पड़ जाते हैं।

अब यदि वे लोग ऐसा न सोचे होते तो यह मानी हुई बात है कि उसका परिणाम भी भिन्न हुआ होता। यह सभी के विषय में लागू होती है। जो स्त्री अथवा पुरुष दिन रात दरिद्रता की बातें किया करते हैं, उसी बात को सोचते रहते हैं और आचरण भी वैसाही करते जाते हैं-वे अप्रत्यक्ष रूप से दरिद्रता का आह्वान किया करते हैं। होते होते एक दिन दरिद्रता उनके घर में प्रवेश कर जाती है। इसी तरह जो लोग नित्यप्रति रोग के लक्षणों, पीड़ाओं और नाड़ियों की गति

का ध्यान दिनरात किया करते हैं वे रोग को आमन्त्रित किया करते हैं और होते २ एक दिन रोगों के चङ्गूल में जकड़ जाते हैं ।

आप चाहे कोई भी क्यों न हों और कैसी भी अवस्था में हों, पर पारस नाम की गुटिका आपके हाथ में है। यदि आप चाहें तो आजही और इसी क्षणअपने शारीरिक और मानसिक कष्टों को दूर करने के कार्य्य का प्रारम्भ कर सकते हैं और शनैः शनैः अपनी हृदय-स्थित समस्त बुराइयों को अच्छाइयों के रूप में बदल सकते हैं ।

किन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि आपकी सारी अज्ञानता क्षण भर मे दूर हो जायगी । आप को सोचना चाहिये कि जिन विचारों ने हमारे अन्दर एक निकम्मे एवं संतापमय जीवन की सृष्टि अधिक समय से की है उसे हटाने में अवश्यही उतने ही समय की आवश्यकता है । किसी वस्तु को नष्ट करने की अपेक्षा उसके निर्माण करने में अधिक काल अपेक्षित है । आपको महान प्रयत्न करना होगा और उसमें नये स्वभाव को लाना होगा । हो सकता है इस कार्य में कई वर्ष बीत जाय और फिर भी प्रत्यक्षरूप से उसका परिणाम कुछ न

दिखलाई पड़े, तोभी आप को यह विश्वास रखना चाहिए कि हमारी आन्तरिक दशा का परिवर्तन धीरे२ हो रहा है और हमारी सारी चिन्तायें एवं विपत्तियां निर्मूल होती जा रही हैं। आप समझ जायँगे कि विचाररूपी महाशक्ति का विरोध किसी भी हालत में किया ही नहीं जा सकता। आपने जिस दृष्टिकोण से अपने किसी आदर्श लक्ष्य को स्थिर किया है उसमें आप पूर्णतः सफल होंगे। आप अपने विचारों द्वारा जिस स्थिति की नींव डाल रहे हैं, आप के वर्तमान और भविष्य के अनेक अथवा समस्त जीवन पर उसका प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। विचारों का सम्बन्ध केवल वर्तमान जीवन से ही नहीं रहता। आज जिस वृक्ष का आरोपण आप कर रहे हैं——उसके फलों को आप को अवश्य२ चखना होगा।

अमरत्व

"मानसिक भावों की धुंधली रेखायें यथार्थ में चाहे जो कुछ भी हों, हमारे दैनिक कार्य्य के लिये वे ही निर्झर-रूपी प्रकाश हैं और हमारे जीवन के व्यापारों को प्रचालित करती हैं, विजयी बनाती हैं तथा हमारे उद्योगपूर्ण जीवन के अनेकों वर्षों को अमर-शान्ति के देवता के मनन करने में एक क्षण का समय अनुगत कराती हैं।"

"हमलोगों की आत्मा ने उस अ-नश्वर सागर का दृश्य देखा है जिसकी लहरें हमें यहां ले आयी

हैं और जिसकी लहरें एक क्षण में हमको वहाँ पहुँचा सकती हैं जहाँ पुनः हमें उक्त समुद्र के तट पर खेलते हुये बालकों के गम्भीर शब्दों का दृश्य सम्मुख हो जाता है।"

—वर्डस्वर्थ

संसार के आदिकाल में जब प्रातःकाल के नक्षत्र-मालाओं से एक संगीत की ध्वनि निकलती थी और उस समय की अपार शान्ति में वह भलीभांति सुनी जा सकती थी तथा क्षितिज प्रान्त का संगीत, स्वर्गीय प्रेम के भावों को एक मधुर लय में पार्वतीय प्रदेशों तथा उपात्यकाओं में गुंजारित कर रहा था; उसी काल में एक मनुष्य के नन्हें बालक ने अपनी आँखों को खोला और चीत्कार करने लगा। इसने वाह्य संसार की ओर दृष्टिपात किया और आश्चर्यचकित हो गया। ऊपर नीले आकाश-मंडल को देखकर उसे अपने सूनेपन का अनुभव हुआ। तब उसे किसी काली गुफा से अथवा गम्भीर जंगल में छिपने की इच्छा हुई। उसकी यह उपरोक्त इच्छा एक अचिन्त्य भय से उत्पन्न हुई थी।

तत्पश्चात् ईश्वर उस बालक के निकट आया और उसका भय विलीन हो गया। साथही साथ उसकी

उपरोक्त इच्छा का उन्मूलन हो गया परन्तु उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। उत्तर न देने का कारण यह था कि उसे किस प्रकार उत्तर देना चाहिये उसकी क्रिया नहीं ज्ञात थी।

ईश्वर ने कहा—

तुम्हें एक पाठ सीखना है—हमारा प्रथम पाठ—इसे सुनो और इस दिवस के प्रत्येक क्षण को अपने भीतर मनन करो। जब संध्या की काली रेखा तुम्हारे मार्ग में बिछ जावेगी और तुम्हें भी इस पाठ को कंठाग्र करते २ श्रमित हो जाना पड़ेगा तो मैं तुझे निद्रा की गोद में लिटा दूंगा। तुम उस मधुर निद्रा में अपने श्रम को भूल जाओगे। दूसरे दिन मैं तुम्हें दूसरा पाठ मनन करने के लिये दूंगा।

उक्त बालक ने ईश्वर के हाथ से वह पाठ ग्रहण किया। यह आकाश में नक्षत्र-मालाओं की तरह प्रकाशित था। यह उस बालक के नेत्रों के लिये स्वर्ण-द्वार की तरह था जो भलीभाँति अनावृत था, परन्तु इसके निकट पहुँचना मुश्किल था। वह सब से ऊँचे तार से भी दूर था। उसने उक्त द्वार के बीच से एक प्रचण्ड प्रकाश देखा और एक रहस्यपूर्ण ढंग से उक्त बालक के हृदय

में यह भाव अनुगत होने लगा कि वह किसी न किसी दिन वहां अवश्य पहुँचेगा। तत्पश्चात् वह दृश्य विलीन हो गया। केवल यह पाठ याद रह गया "मैं मैं हूँ"

यह पाठ कंठाग्र करना दुस्साध्य मालूम होता था, अतः बालक ने इसको सीखने मे कई घंटे लगा दिये। इस कार्य में वह इतना उत्सुक था कि उसे इसका तनिक भी ध्यान नहीं रहा कि दिवस का मध्याह्न समाप्त हो चुका है और प्रकाश मंद पड़ रहा है। तद्यपि वह अपने पाठ को कठाग्र करने में दत्तचित्त रहा—वह बड़ा पाठ जिसको ईश्वर ने उसे सीखने को दिया था। तब तक शाम हो गई और वह क्लांत होकर उठा परन्तु अब वह छोटा बालक नहीं था—दिवस बहुत लम्बा है और उसकी आकृति ऊँची तथा आयु के अनुपात से झुकी हुई, उसके बाल श्वेत और उसकी अलकें कटी हुई थीं। तब उसने कहा मैं थक गया।

ईश्वर ने मुस्कराहट के साथ कहा "अब सो जाओ और आराम करो"।

वह निद्रा से फिर जगा। परन्तु इस समय उसे

भय का तनिक संचार नहीं हुआ और न कहीं छिपने की इच्छा हुई। वह नीले आसमान की तरफ देखने लगा और अपने हाथों को उसकी तरफ फैलाया। ऐसा क्यों हुआ? उसे ज्ञात न था। उसने कुछ सुनने के विचार से ध्यान लगाया और बाट देखता रहा।

ईश्वर ने कहा—

'देखो यह दूसरा पाठ है। इसको भलीभाँति कंठाग्र करो और संध्या को श्रमित होकर लौट आवो तब मैं तुम्हें निद्रा की गोद में पुनः लिटा दूँगा।'

उस बालक ने ईश्वर के हाथ से वह पाठ ले लिया और संसार में निकला। वह संसार के वृक्षों, पुष्पों को एकटक देखने लगा, साथ ही साथ उसके जन्तुओं को भी देखता परन्तु प्रत्येक क्षण टहलते हुये वह उस पाठ को याद किया करता था—यह द्वितीय पाठ प्रथम पाठ की अपेक्षा कठिन था।

दूसरा पाठ था—"तुम तुम हो"

तब उसे प्रथम बार प्रसन्नता का अनुभव हुआ और उसके हृदय में आनन्द की उत्पत्ति हुई। परन्तु जैसे ही इन भावों का उसके हृदय में संचार हुआ तैसे ही

उसके मार्ग में संध्या की काली रेखायें बिछ गईं। सूर्य डूब गया। तब उस आदमी ने अपने पीले चेहरे को ऊपर उठाया और यह कहते हुये विहँस उठा—

"ऐ ईश्वर हमलोग अधिक श्रमित हैं।"

ईश्वर ने कहा—

"सो जाओ और आराम करो। कल मैं दूसरा पाठ याद करने को दूंगा।"

तीसरे दिन बालक को निद्रा भंग हुई। वह उठा और नेत्रों को रगड़ा परन्तु ऊपर को ओर उसने न देखा और न तो नीले आकाशमंडल की ओर ही अपना हाथ फैलाया। उसने चारोतरफ दृष्टि फेकते हुये कहा—

"मेरा साथी कहां है ?"

तत्पश्चात् ईश्वर ने तीसरा पाठ उसे याद करने को दिया। अहा ! यह तो प्रथम दोनों पाठों की अपेक्षा कठिन था और जब उसने इसकी तरफ दृष्टि-पात किया तो एक क्षण के लिये वह मूर्छित हो गया। तत्पश्चात् एक विलक्षण उत्साह की लहर उसके हृदय में दौड़ गई और वह अपने आश्रय देनेवाली छड़ी को लेकर चल पड़ा।

तृतीय पाठ था—"तुमको भूलना नहीं चाहिये"

शाम को सूर्यास्त हो जाने पर वह शिथिल पड़ गया तथा उसे एक बड़ी श्रांति आ गई। उसके बाल बर्फ की तरह श्वेत हो गये थे। यह कहना कठिन प्रतीत होता है कि यह श्वेती उसके बाल की थी या सूर्यास्त के पश्चात् सूर्य के आभा की। परन्तु एक प्रकाश की रेखा जो उसके ओठों पर लहरा रही थी, उसके पीले अलकों पर चमकने लगी। वह सो गया और एक बालक की तरह निद्रा-देवी की गोद में विहँस पड़ा।

दिन प्रतिदिन वह बालक सोकर जागता और सोचता कि वह हरबार एक नवीन संसार का निरीक्षण कर रहा है परन्तु वह अपने मस्तिष्क से यह प्रश्न न करता कि वह अब क्यों भयभीत नहीं होता। वह अपने साथियों को देखकर हँसता। वे लोग भी हँसकर उसकी हँसी का जबाब देते। लेकिन कोई इसका कारण न पूछता।

परन्तु किसी दिन वह बालक अपने पाठ को याद करने में असावधान रहने लगा—कारण यह था कि प्रति-

दिन जागने पर ईश्वर उसे एक नया पाठ याद करने को देता था। किसी २ दिन वह भूल जाता था। अतः इस भूल के कारण वह उक्त "प्रचण्ड-प्रकाश" तथा "अनावृत द्वार" तक पहुँचने से विमुख रहता। प्रत्युत रास्ते से सीधे मार्ग से विचलित हो जाता तब वह स्वर्ण-वर्ण के पतंगों को दलदल के बीच से पीछा करने चलता और कभी समुद्र के मध्य में स्थित हिलते प्रकाश को पकड़ना चाहता। जब रात्रि का प्रवेश होता, वह हँसने से असमर्थ रहता। वह सोता—जगता और फिर वही पाठ याद करने लगता।

किसी किसी दिन वह मार्ग से विचलित हो जाता और तब उसे दुःख में अपने अमित पदों को उस मार्ग पर लाने के लिये पुनः लौटना पड़ता। कारण यह था कि उक्त बालक और उक्त मनुष्य सर्वदा स्वतंत्र थे क्यों-कि उन्होंने यह पाठ कंठाग्र कर लिया था कि "मैं मैं हूँ"

सुअवसर

विगत काल में एक न्यून कोटि का यात्री माननीय सृष्टि का निरीक्षण करने संसार में निकल पड़ा और वह अपने आश्रय देनेवाली छड़ी को लिये हुये धूल से धूसरित रक्तवर्ण की खड़ाऊं पहने और यात्रा का जीर्ण कम्बल अपने चारों ओर लपेटे हुये, दैवात् एक राज-मार्ग पर एक मनुष्य से मिला। वह मनुष्य बलिष्ट और एक नवयुवक था और आत्म-विश्वास से पूर्ण टहल रहा था। उसके साथ अनेकों भृत्य और आश्रित थे,

उनमें से कई चाँदी और चर्म से वेष्टित बँधी हुई सुन्दर पुस्तकों को लिये थे। उनके जिल्द पर स्वर्णा-क्षरों में प्राचीन काल के शास्त्रकारों के नाम खुदे हुए थे। साथही साथ संसार के बड़े २ रक्षकों के नाम भी अङ्कित थे। और वे लोग नियम और आचरण से सम्ब-न्धित पुस्तके, वैदिक मंत्रावली, उपदेश मंत्रावली तथा उक्त उपदेश और आज्ञा के अनुसार आचरण करनेवाली जातियों के नाम की पुस्तके लिये हुये थे। कुछ लोग उन लोगों के पृष्ठ भाग मे शहनाई बजाते हुए चल रहे थे। सत्यतः यह एक विलक्षण जलूस था जो उक्त बलशाली मनुष्य को अग्रभाग में अवस्थित करके चल रहा था। उक्त जलूस के अन्दर न तो शिक्षा की, न वर्ण की, न शब्द की और न आत्मविश्वास की न्यूनता थी। जिस मार्ग से होकर जुलूस जाता उस मार्ग के पथिक आश्चर्यान्वित होकर खड़े हो जाते तथा उक्त जलूस को देखने लगते। उक्त न्यून कोटिका यात्री भी आश्चर्य-चकित होकर खड़ा हो गया, निर्निमेष उनकी तरफ देखने लगा।

परन्तु उक्त यात्री उक्त नवयुवक के अधिक समीप

होने के कारण—वे इतने समीप थे कि नवयुवक के रेशमी वस्त्र के किनारे को उक्त यात्री के कम्बल स्पर्श कर रहे थे। उक्त यात्री ने साहसकर निम्नांकित सीधा प्रश्न पूछा :—

"महाशय! कृपया क्या आप मुझसे बतला सकते हैं कि आप कहां से आ रहे हैं और कहाँ जा रहें हैं ?"

उक्त नवयुवक ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—

मैं शिक्षा के महल और ज्ञान के दर्वार से आ रहा हूँ और इसप्रकार सज धजकर अवसर की जिज्ञासा में जा रहा हूँ।

उक्त नवयुवक उत्तर देता हुआ चल रहा था। वह अपने कन्धे के ऊपर मुख फेरते हुए अन्तिम शब्द बोला, उक्त यात्री रुक गया और उसकी तरफ देखने लगा। तत्पश्चात् उसके मुख-मण्डल पर एक मुस्कराहट की रेखा दौड़ गई। पुनः वह अफसोस की सांस फेंकने लगा। अपने कम्बल को चारों तरफ से समेट लिया और तब वह चल पड़ा।!

तुरन्तही वह मार्ग के किनारे बैठे हुये एक नवयुवक से मिला जिसका मस्तिष्क झुका हुआ था और घुटनों के

पार्श्व से अपने दोनों हाथ वद्ध किये हुये था। वहुत लोग जो अपने कार्य में अथवा मन वहलाव के निमित्त शीघ्रता से जा रहे थे उत्सुकतापूर्ण नेत्रों से उक्त मनुष्य को जो वोझ से दवा था और शिथिल होकर धूप में वैठा था, देखने लगते। परन्तु वहां रुककर उससे कुछ न पूछते। कुछ लोग यह आश्चर्य्य प्रकट करते कि उक्त मनुष्य इस प्रकार भीड़ में शहर के मध्य भाग में क्यों अवस्थित है, जहाँ पर सुख और दुःख, हँसी और निराशा, कार्य और खेल कूद, प्रार्थना और जिससे प्रार्थना की गई है, ऐसे वस्तुओं का जमघट हर घण्टे वहाँ से जाता रहता था। कभी २ छोटे वालक जिनके पद नग्न थे, अपनी विशाल किन्तु शोकाकुल आँखों से— जिनमें जन्मान्तर का शोक प्रविष्ट हुआ प्रकट होता था, उसके सन्निकट आते और उसको देखकर खिलखिला उठते; किन्तु वह उन्हें न देखता। वे वालक अपने को सभ्य और सुशिक्षित पुरुष समझते हुये पुनः खेल कूद में भाग लेने चले जाते। एक वार तो एक स्त्री उसके इस प्रकार सन्निकट से गई कि उसके वस्त्रों से उसका पद स्पर्श हुआ। किन्तु वह उसके भी शुष्क

किन्तु शोकपूर्ण वक्षस्थल का निःस्वाश भी न सुन सका। और न तो उसने जो अपने जीर्ण वस्त्र के अंचल में बलपूर्वक बांधकर पकड़े हुये थी, वही देखा।

पीली और सूखी हुई मुखाकृति के ऐसे मनुष्य उस मार्ग से जाते, जिनके ओठों पर गम्भीर शंका के चिह्न लक्षित हो रहे थे और जिनके गहरे नेत्र-पुटों में ईश्वरीय प्रकाश विकसित था। वह बैठा हुआ उनको देखकर कुछ पर्वाह न करता।

तब वह यात्री उसके सन्निकट पहुँचा और बोला :—

"ओ नवयुवक पुरुष! मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ, क्या तुम मुझे कृपया बतला सकते हो कि सम्पूर्ण दिन तुम यहाँ किस अर्थ से बैठे हो?"

उस नवयुवक ने उत्तर दिया—

"मैं सुअवसर की बाट देख रहा हूँ। आप जाइये और कृपया मुझसे प्रश्न न कीजिये। नहीं तो जिसके निमित्त आगमन की बाट देख रहा हूँ, वही चला जाय और मैं उसे देख न सकूँ।"

तब उक्त यात्री एक शोकपूर्ण भाव से विहंस पड़ा। उस समय वह नीचे झुका हुआ उस नवयुवक के पास

पेर के साथ पड़े हुये एक छोटे बालक को आराम पहुँचाने के लिये तथा अश्रु-पूछने के लिये प्रयत्न कर रहा था किन्तु वह नवयुवक शान्ति से बैठा हुआ बाट जोह रहा था।

तब उक्त यात्री उक्त शहर के उस भाग में पहुँचा जहां पर मनुष्य तमाम दिन यत्नपूर्वक परिश्रम करते रहते हैं। उसने तत्रस्थित सुन्दर बन्दरगाहों को जिनपर विशाल जहाज अपने माल उतारा करते थे, निरीक्षण किया। तत्पश्चात् वह यात्री उक्त भाग से और आगे बढ़ा, जहाँ पर कारोबार के कार्यालयों का जमघट था, प्रतिघंटे मशीन के बधिर करनेवाले आघात का उस उष्ण प्रान्त पर शोर हुआ करता था, बलवान मनुष्य और स्त्रियां अपने काम पर संगीत की ध्वनि अलाप रहे थे, प्रसन्न-मुख मनुष्य और प्रसन्न-वदना स्त्रियाँ परिश्रम करते हुये आपस में हंसी और प्रहसन कर रहे थे, जहाँ निर्बल और शान्त अपने साथियों की बराबरी करने के निमित्त अपनी मूर्च्छा को दूर करने मे प्रयत्नशील हो रहे थे तथा अपने बलिष्ट अंगों से युक्त किन्तु नम्र हृदयवाले सहायकों से सहायता पा रहे थे।

इस प्रकार उक्त यात्री मानवीय-सृष्टि का निरीक्षण करते आगे बढ़ा।

कुछ समय पश्चात् वह एक ऐसे मनुष्य के सन्निकट पहुँचा जो अपने अथक हाथों से बड़े परिमाणवाले औजारों से धधकती हुई भट्ठी के बीच काम कर रहा था, जिसके उत्सुक चेहरे पर उक्त भट्ठी से प्रचालित अग्नि की अनेक रश्मियाँ पड़ रही थीं। वह था नवयुवक, किन्तु देखने में वृद्ध प्रकट हो रहा था। किसी क्षण में जब उसकी बलिष्ट भुजायें और सुसंगठित चेहरे पर उस भट्ठी का प्रकाश पड़ता था तो मालूम होता था वह अपने युवावस्था में पदार्पण करने वाला एक नवयुवक है। किन्तु दूसरे क्षण में जब वह अपने गहरे किन्तु चमकते हुये नेत्रों को, जिनमें आन्तरिक प्रकाश का प्रतिबिम्ब लक्षित हो रहा था, ऊपर उठाता—तब वह एक वृद्ध पुरुष प्रकट होता। वह मौन था और प्रश्न करने पर मित भाषण करता था। परन्तु उसको देखने से यह जाहिर होता था कि वह अपने ओठ, अपने हृदय से भाषण करने के लिये अथवा। आगामी भविष्य से तर्क वितर्क करने के लिये हिलाया करता

था। उक्त स्थान पर अन्य कई मनुष्य भी उपस्थित थे जो उक्त भट्ठी के प्रकाश मे प्रयत्नशील हो रहे थे। परन्तु वे लोग कुछ मित्र-से मालूम हो रहे थे। अतः चुपके से उक्त यात्री उनके आगे बढ़ा और उस स्थान तक उस वृद्ध किन्तु युवक पुरुप के समक्ष खड़ा हो गया, जिसके चेहरे पर उत्सुकता की लहर उमङ्गित हो रहा थी और जिसके नेत्रों में आभ्यान्तरिक प्रकाश प्रतिबिम्बित हो रहा था। कुछ क्षण देखने के पश्चात् शान्तिपूर्ण शब्दों में उक्त यात्री ने उससे पूछा:—

"मित्र! तुम क्या कर रहे हो?"

तत्पश्चात् उस पुरुप ने अपने सुन्दर नेत्र ऊपर उठाये और हँसते हुये बोला:—

"मैं सुअवसर के निमित्त इन वस्तुओं को तैयार करने में प्रयत्नशील हूँ।"

उक्त यात्री उस पुरुप की तरफ देखकर मुसकराने लगा—उसने उसका स्पर्श किया और कहा:—

"मेरा अनुसरण करो"।

हृदय।

ओह! विश्वसनीय नेत्र मैं प्रति दिन तुम्हें देखता हूँ और जानता भी हूँ तुम अटल, सुन्दर और विश्वसनीय हो। तुम अपने नैमित्तिक व्यापार में उद्योग-निरत हो जिसको कोई देख नहीं सकता; किन्तु मैंने देखा है–मैं तुम्हें विस्मित नहीं कर सकता। मैं तुम्हारी विक्षिप्त सुप्तशक्ति, विनय, साहस और अभिलाषाओं को जानता हूँ। अपने सत्य-मार्ग पर अग्रसर हो विश्वास रक्खो, अपने अलक्षित भण्डार को पवित्र रक्खो।

अनेकों जन तुम्हारे कल्याण की कामनायें करेंगे और अनेकों को जिनसे कुछ भी बतलाया नहीं गया है, तुम्हारी आकृति एक दीपक की भाँति प्रज्वलित होगी। यह स्मरण रक्खो कि जो कुछ तुम्हारी अभिलाषायें हैं, शान्ति के समय उन सम्पूर्ण अभिष्ट वस्तुओं का भण्डार तुम्हारे समक्ष उपस्थित होगा।"

—एडवर्ड कारपेन्टर

सम्पूर्ण विस्तृत दिनपर्य्यन्त, मानव समाज के भीड़ वाले स्थान के सन्निकट एक किशोरी बालिका अपने द्वार पर बैठी अपने करघे पर कार्य कर रही थी। स्वर्गीय और रजतवर्ण के सूत्र उसके गुलाबी अंगुलियों के मध्य में चमक रहे थे और रेशमी धागे जो सुन्दर रंग के प्रतीत होते थे जब उसके हाथ से एक चकाचौंध करनेवाले सुन्दर जाल में गुजरते तब मिश्रित हो जाया करते थे। जिस समय वह किशोरी बालिका कार्य-लग्न थी, उसके नेत्र बहुधा नीले समुद्र पर बहुत दूर जहाँ गेहुँआ रंग के सिरों से युक्त मेघ निम्न प्रान्त की ओर उक्त समुद्र के नृत्य

करती हुई लहरों की रजताभ्र शिखाओं को चूमने के निमित्त प्रयत्न शील हो रहे थे, देखा करती।

कभी कभी जिस समय सूर्य अपने प्रचण्ड प्रकाश में चमक रहा था और समुद्र के ऊपर एक चकाचौंध सी उत्पन्न कर रहा था, वह एक क्षण के लिये रुक जाती, अपने हाथों से आँख पर छाया करने के निमित्त ढरकी को छोड़ देती और यदाकदा, वह अपनी उत्सुकता में आधा उठ जाती जिससे यह प्रतीत होता था कि उसकी दृष्टि किसी ऐसे पदार्थ पर पड़ी है, जिसके निमित्त वह इतनी देर से बाट देख रही थी; परन्तु उसका इस प्रकार आधा उठना केवल एक गम्भीर शोक-पूर्ण निश्वास छोड़ने के निमित्त हुआ करता और वह ढरकी चलाने लगती।

और उसका बाट देखना तथा काम करना, साथ साथ होने लगता और उसका जाल प्रतिदिन सुन्दरता को प्राप्त होता जाता। वहाँ अन्य जुलाहे भी थे, उनमें से कुछ देखने में सुन्दर भी थे। यह सुन्दरता उस समय प्रतीत होती थी जब उनके स्वर्णीय बाल के प्रत्येक झोंके कलोल करने लगते थे तथा उनकी विहँसती आँखे

एक चेहरे से दूसरे चेहरे तक पड़ती थीं। वे कहा करते हृदया को देखो और वे विहँस उठते, वह कभी भी घासके मैदान मे नृत्य करने के निमित्त नहीं रुकती और नतो रक्तवर्ण के गुलाब के पुष्पो कोही अपने वालों मे गूथती। मूर्ख हृदया, परन्तु हृदया हँसती और अपने कार्य में अग्रसर होती।

उक्त प्रदेश के राजकुमार वहुधा किशोरी वालिकाओं का निरीक्षण करने आया करते। ऐसे अवसर पर स्थानीय किशोरी वालिकाये प्रसन्नोन्मुख होकर वुनना वन्द कर देती तथा ढरकी को छोड़कर नृत्य में भाग लेने चली जाती अथवा सुन्दर हरियाली वाले वृक्षों के मधुर पुष्पों को तथा प्रगाढ़ रक्ताक्त गुलाबी पुष्पों को चूमने के निमित्त दूर निकल जातीं और उक्त पुष्पों से सुन्दर मालाये तैयार करतीं—जिनसे अपने को तथा अपने प्रेमियों को सुसज्जित करती।

किन्तु हृदया अपने वुनने के कार्य को प्रचालित रखती।

एक दिन एक राजकुमार वहाँ आया। उसने देखा कि सूर्यदेवकी रश्मियां उसके हाथों से गुज़रती हुईं स्वर्णीय

सूत्र के भीतर और वाहर नृत्य कर रही हैं; साथ ही उसने उक्त किशोरी की मनोहर कमनीयता को भी देखा। उसको आश्चर्य हुआ कि इसका क्या कारण है कि जब उसकी सहेलियां अपने प्रेमियों के संग उक्त घास के हरे प्रान्त में विराजमान थीं हृदया अकेली अपने कार्य में संलग्न थी। जिस समय वह उक्त सुन्दरी की सुन्दरता का निरीक्षण कर रहा था उसे इसको प्राप्त करने की अगाढ़ इच्छा उत्पन्न हुई और वह उसके पास जाकर रुक गया।

तव वह किशोरी चकपका उठी और राजकुमार की तरफ नेत्र उठाकर देखने लगी, उसने (राजकुमार ने) अपनी ओर उक्त वालिका को देखते हुए उसके नेत्रों की गहन निलिमा को लक्षित किया और कहा।

"सुन्दरी! क्या कारण है कि तुम अपनी सहेलियों के संग नही रहतीं ?"

उक्त वालिका ने उत्तर दिया।

"मेरा नाम हृदया है—मैं किसी की वाट देखती हूं।" तत्पश्चात् उक्त राजकुमार उसकी तरफ झुकते हुए नम्रभाव से वोला—

"आह हृदया ! तुम किसकी बाट देख रही हो ?" उसने कहा, "मैं प्रेम की बाट देख रही हूँ।"

इसे सुन वह तुरंत खिलखिलाकर विहंस पड़ा।

"तुम भूखी हो, जिस वस्तु की तुम बाट देखा करती हो उसका कुछ अस्तित्व ही नहीं है, यह स्वप्न की वस्तु है और अशृङ्खल कल्पनायें जो तुम्हारे ऐसे शुष्क मस्तिष्क में उठा करतीं हैं—निष्प्रयोजन है। अपने दिवस को इसप्रकार व्यर्थ न व्यतीत करो। वह तुम्हारे पास कभी न फटकेगा।"

इतना कहकर वह उसके और निकट आ गया और उसके ऊष्ण निःश्वास का अनुभव उसके मुखमंडल पर होने लगा।

"मेरे साथ आओ, ओ सुन्दरी ! मैं सच्चा और आज्ञाकारी हूँ, मैं तुम्हारे दिवस को मंगलकारी बनाऊँगा और तुमको बहुत प्रसन्न करूँगा।"

तब हृदया का हृदय दुःख की पीड़ा का अनुभव करने लगा और हृदय यकायक चीत्कार कर उठा।

"तुम कौन हो ?"

उसने उत्तर दिया। "मुझे लोग जीव का कामदेव कहते हैं।"

परन्तु उक्त किशोरी ने अपने हाथों से अपने मुख को छिपा लिया और चिल्ला पड़ी।

"तुम दूर हटो ! दूर जाओ !! मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी"

इसके पश्चात् एक अन्य स्त्री वहां पहुँची, वह तीव्र गति से चल रही थी, उसके भूरे बाल उसके कपोल पर कलोल कर रहे थे और उसके रेशमी वस्त्र सूर्य की स्वर्णीय। रश्मियों में चमक रहे थे। उसके बालों मे गुलाब के पुष्प बिखरे हुये थे, और अन्य मधुर पुष्प उसके गले से लटकती हुई लड़ियों के ऊपर और नीचे भाग को सुशोभित कर रहे थे। उसकी मुट्ठी पुष्पों से भरी थी।

"उसने आवेशपूर्ण शब्दों में कहा, "हृदय ! हृदया" !! आओ अपने करघे को छोड़ो, देखो पुष्प किसप्रकार विकसित हो रहे हैं। क्या तुम्हें इनकी सुगन्ध नहीं आ रही है ? हरे प्रान्त पर की संगती और पदध्वनि को सुनो।"

हृदया ने पूछा "तुम कौन हो ?"

"मैं आनन्द की मूर्ति हूँ, मैं हृदय में आनन्द की वर्षा करता हूँ और मेरी उपस्थिति से धमनियों में उन्मत्त भाव का सञ्चार हो जाता है। मुझे शीघ्रता से जाना है अतः मेरे साथ शीघ्र आओ।"

हृदया ने उत्तर दिया "नहीं नहीं तुम जावो और अपना मार्ग लो, मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी अन्यथा जिसका मैं बाट देख रही हूँ वह आवे और मुझे न पावे।"

"हृदया! तुम प्रतिदिन किसकी बाट देखती रहती हो। जिस समय तुम्हारी सहेलियां अपने प्रेमियों के संग नृत्यगान करती हैं तुम क्यों अकेली शिथिल यहां बैठी रहती हो ?"

हृदया ने कहा, "मैं प्रेम-देव की बाट देख रही हूँ।"

"तुम एक शून्य की कल्पना कर रही हो, वह केवल छायामात्र है, यह न कभी कोई अपना अस्तित्व रखता था और न कभी भविष्य में उसका कोई रुप होगा।" और जाते समय खुशी की मूर्ति ने कहा—ऐ मूर्खा हृदया! इसीप्रकार धागा पिरोती रहो, देखो क्या फल होता है।"

परन्तु हृदया समुद्र की ओर ताकने लगी और हाथों से उसने अपना मुखमंडल ढंक लिया। लहरें सूर्य की किरणों से कलोल मचा रही थी, मेघ के छोटे खंड जो श्वेताम्बर पहने थे, उन लहरों के कपोल-स्पर्शार्थ आते और पुनः ऊपर उठ जाते किन्तु हृदया कुछ न देखती। एक बीर पुरुप कवच से सुसज्जित और अपने डरावने घोड़े पर चढ़ा हुआ उक्त किशोरी के समीप आया जो सुन्दरता के जाल में स्वर्णीय और रजत-वर्ण के धागों को पिरो रही थी और उसके पार्श्व मे स्थिति होकर कहने लगा—

"ओह सुन्दरी! तुम अकेली यहां क्यों बुन रही हो? तुम्हारी अन्य सहेलियां तो हरे घास के मैदान में और जंगल के वृक्षों के नीचे अपने प्रेमियों के संग आनन्द मना रही हैं।"

"महाशय, मेरा नाम हृदया है, मैं एक पुरुप की यहाँ बैठकर बाट देख रही हूँ, वह एक दिन मुझे बुलाने आवेगा।" हृदया ने कहा।

"ऐ सुन्दरी! उसका नाम क्या है?"

"उसका नाम प्रेम है" हृदया ने कहा।

उक्त बीर ने बड़े आवेशपूर्ण शब्दों में कहा—

"ओह ! दयनीय बालिका !! क्या तुम ठग गई हो ? क्या तुम्हें यह ज्ञात नही कि प्रेम मर गया है ? वह तो अधिक काल व्यतीत हुआ मर गया। तुम्हारी सहेलियां इस प्रसंग को जानती है। वे उसी विषय की वार्ता करती हैं जो उपस्थित है, जो जीवित है और दृष्ट है, वे उस विषय के पीछे नही पड़ती जो अदृष्ट, मृत और अनुपस्थित है। अपने अपार जाल का त्याग करो, मैं धन हूं और इस संसार के मानव-समाज का अधिपति हूं, मैं तुम्हें अभूषणों से वेष्टित कर दूंगा और रेशमी वस्त्रों से अच्छादित करूंगा, तुमको संगमरमर के विशाल भवन में रखूंगा और दास तथा भृत्यलोग तुम्हारे आज्ञा-पालन में लगे रहेंगे, मेरे पास आओ। सुन्दरी ! देखो घोड़े पर दो पुरुषों के निमित्त स्थान हैं।" किन्तु हृदया ने अपना शिर हिलाते हुये पुनः समुद्र की ओर, देखना आरम्भ किया—

और सहेलियां जो उसके पास से जातीं उसको मूर्खा और पगली कहकर पुकारतीं "जो तुमको मिल रहा है उसे तुम क्यों नहीं ग्रहण करतीं ? जिसके निमित्त तुम यहां बैठी हो वह कभी न आवेगा।"

"मैं प्रेम की बाट देखती रहूँगी, तुमलोग अपना मार्ग लो" हृदया ने कहा।

हृदया उठो, समुद्र के पार कोई बहुत सुन्दर वस्तु दिखलाई दे रही है, अपनी आखों को हाथ से ढंक लो क्योंकि वह किनारे के समीप आ रहा है। हृदया आओ! अब वह बालुका-प्रदेश पर अवतरित हो रहा है। वह वहां खड़ा होकर तुम्हारी खोज कर रहा है और ज़ोर के शब्दों में तुमको पुकार रहा है और कह रहा है:—

"मैं उस बालिका के निमित्त आया हूँ जो मेरी बाट देख रही है, और बहुत समय से बाट देख रही है, वह कहाँ है।"

उसकी वाणी मंद, मधुर और गम्भीर है। जब उक्त बालिका ने यह सब सुना तो तुरंत उठी। अब उसे आगा पीछा सोचने की इच्छा न हुई, वह अपने जाल को छोड़-कर उठी और आनन्द की उमंग मे उक्त आगत पथिक से मिलने गई और बड़े आवेग के साथ कहने लगी "मैं तुम्हारी हृदया हूँ।"

उनके हृदय में एक दूसरे को अपना भाव हृदय-ङ्गम कराने के प्रति भाव उमंगित हो रहे थे, एक दूसरे

का हाथ पकड़े वे समुद्र के किनारे टहलने लगे। जब वे टहल रहे थे उनके मुखमंडल पर प्रेम-ज्योति प्रकाशित हो रही थी और प्रेम के आनन्द से उनका हृदय पूर्ण था। "जीवों का कामदेव" आया, वह अपने हिलते हाथों से एक छड़ी पर झुका हुआ था और उसके सम्पूर्ण अङ्ग शिथिल पड़ गए थे।

तत्पश्चात आनन्द की मूर्ति आई। उसके रेशमी वस्त्र जीर्ण हो गये थे, उसके वाल के पुष्प मुर्झाए हुये थे उसके आभूषण रंगहीन हो गये थे और उसका मस्तक नीचे झुका हुआ था।

उनके पश्चात् धन आया। वह चीथड़े पहने था। उसके पद कटे हुए और रक्तानुरंजित हो गये थे और वह चिग्घाड़ते हुये अपने वक्षस्थल पर हाथों से मार रहा था।

प्रेम ने हृदया को वहुत ही निकट खींच लिया। हृदया विहँस पड़ी और कहने लगी "मुझे बाट देखने से वड़ा आनन्द मिला।"
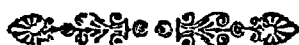
मेरी निधि

मैंने सोते हुए एक स्वप्न देखा, उक्त स्वप्न में मैंने अपनी निधि को वक्षस्थल से चिपकाकर बहुत अनुराग प्रकट किया, किसी समय तो यह मुझे ऐसा प्रतीत होता कि यह सोने का ठोस पदार्थ है, जो बहुत सुन्दर, मूल्यवान और मनोहर है; परन्तु किसी समय यह प्रतीत होता कि यह मेरी प्रेमिका का कमल-मुख है। इस प्रकार उक्त दोनों भाव एक दूसरे से ऐसे मिश्रित-से हो गये थे कि मैं एक दूसरे को विलग न कर सकता था।

तत्पश्चात कोई आकर मेरे सम्मुख उपस्थित हो गया। वह सूर्यास्त-काल की छाया के रंग का एक लम्बा और इतस्ततः झूलता हुआ लबादा पहिने था, उसके पंख इतने वलिष्ट थे कि उसपर मनुष्य को बैठाकर वह पृथ्वी से स्वर्ग तक ले जा सकता था परन्तु उसके मुखमंडल पर एक ऐसे रंग का आवरण था जिसका रंग सूर्यास्त के पश्चात् पच्छिमीय दिशा में रक्ताक्त मेघ के समान था, और जिस समय वह मुझसे बोला मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि समुद्र के ज्वार-भाटा के समय की लहरों की गरज हो रही है। उसने मुझसे कहा "अपनी निधि मुझे दे दो।" मैंने कहा "नहीं, नहीं आप मेरी निधि को क्या करेंगे" मैंने अपनी निधि को और भी चिपका लिया।

तब उसने कहा "अभीतक तुम्हारी निधि पवित्र नहीं है।" पवित्रता का ख्याल हटाते हुये मैं उसके पास से हट गया क्योंकि मुझे अपनी निधि से महान स्नेह था। मैं अपने मनमे अनेकों विचार करने लगा—क्या यह मेरी निधि नहीं है? क्या यह पूर्ण पवित्र नहीं है? यदि नहीं भी है तो क्या, मेरे प्रेम ने तो इसे पवित्र बना दिया है, प्रेमी केवल प्रिय की महानता का ही

चित्र खींचता है, उसमें पवित्रता के भाव का आरोपण करता है चाहे अन्य लोग उसे अपवित्र ही समझें। प्रेम में दोषारोपण की शक्ति ही कहाँ ?

मैं अपने हृदय के गम्भीर प्रेम के साथ चिल्ला उठा—"मैं अपनी अपवित्र निधि होसे संतुष्ट हूँ। जिसको तुम कलंक कहते हो वह मुझे प्रिय है। तब उसने मंद किन्तु आवेशपूर्ण शब्दों में कहा—

"मेरे वत्स ! यदि तुम अपनी निधि स्वयं न दे दोगे तो मैं अवश्य बलपूर्वक इसको लेही लूंगा, इसका कारण यह है कि राजा साहब आपकी निधि अपने मुकुट में जड़ाना चाहते हैं, परन्तु जड़ाने के पहले इसकी परीक्षा होगी।"

"परीक्षा ! क्या मतलब है ?" मैंने पूछा।

उसने उत्तर दिया "यातना।"

मैं विह्वल हो चिल्ला उठा "आप मेरी निधि लेने वाले कौन हैं ? मुझे इससे अपार स्नेह है, मेरे निमित्त यह बहुत सुन्दर है, इसमें कोई अपवित्रता नहीं है। मैं इसको किसप्रकार विलग कर सकता हूँ ?" जब मैं यह कह रहा था मेरा हृदय बहुत दुःखित था और

अपनी निधि पर मैं अश्रुःपात कर रहा था अथवा यों कहिए कि अपनी प्रेमिका के मुखमंडल को मैं आंसुओं से तर कर रहा था—स्वप्न बड़ा विचित्र और रहस्यमय होता है ।

कुछ क्षण पश्चात् उक्त पुरुष जो मेघाम्बर का लबादा लपेटे मेरे पार्श्व में स्थित था पुनः मुझसे कहने लगा—

"क्या तुम इतनी ही देर में यह भूल गये कि प्रिय वस्तु के त्याग करने से ही प्रेम की शक्ति का नाश नहीं होता?"

इन बातों ने मेरे हृदय को दहला दिया और मैंने अस्फुट स्वर में कहा—

"महाशय अपना नाम बतलाइये तो मैं आपको अपनी निधि समर्पित कर दूं ।"

उसने उत्तर दिया "मैं दुःख-देव हूँ ।"

मैंने पूछा "आप अपने मुखमंडल पर आवरण क्यों डाले हुए है?"

उसने उत्तर दिया "मैंने इसे आवृत नहीं किया है किन्तु तुम और तुम्हारे साथी—मनुष्य समाज ने यह आवरण स्वयं बुन लिया है। इस कारण न तो मुझे वे

समझ सकते हैं, न मेरा मुख उनकी दृष्टि ही में आता है।"

मैंने उसे अपनी निधि दे डाली और उक्त कार्य की पीड़ा इतनी प्रबल थी कि मैं जाग पड़ा।

मैं अपने बिस्तर पर करवटे बदल रहा था। अपनी निधि के निमित्त ईश्वर से यह प्रार्थना कर रहा था कि वह सुरक्षित रहे परन्तु मेरी आंखे निद्रा के भार से दबी हुई थीं। मैं पुनः सो गया और स्वप्न का क्रम पुनः बॅध गया।

मैंने अपने हाथों को देखा वे रिक्त थे, मैं अकेला उस निर्जन और घनघोर तथा डरावने स्थान में पड़ा था। मुझे यह ज्ञात होता था कि मेरा हृदय उस घबराहट में फट जायगा; तब एक विचित्र घटना हुई, मेरा कमरा एक मैदान के रुप में परिणित हो गया और छाया के मध्य मैंने एक चिता देखी, चिता के ऊपर कोई वस्तु अग्नि में तपाई जा रही थी। मैं श्रमित तो था ही, लुढ़कते हुये उसके सन्निकट जा पहुँचा और मुझे एक अनिवार्य इच्छा ने उस तप्त वस्तु को देखने के निमित्त आ दवाया। मैंने चिता के पार्श्व में उंगलियां रख झांकना

आरम्भ किया। अग्नि अपने प्रचण्ड रूप में प्रज्वलित हो रही थी और उक्त निधि की अग्नि-परीक्षा हो रही थी। वह एक मनुष्य के हृदय की भांति अग्नि में सिमट रही थी। हाय! ईश्वर वह मेरी ही निधि थी—यह मेरे प्रिय-तम की मुखाकृति थी।

तत्पश्चात् मैंने चिल्लाकर कहा—ओह! दुःखदेव इतना अव अतम् है। वह चिता के पार्श्व में स्थित था और अग्नि को आहुति दे रहा था।

तब मैं अपनी असहनीय पीड़ा में जाग पड़ा। सबेरे की अप्रतिभ सूर्य की किरणें मेरे परदे के मध्य में खेल रही थीं परन्तु उस स्वप्न की अनुभूति इतनी सत्य थी कि मुझे पीड़ाने हिलने न दिया, मैं चीखने लगा और किरणों के विरुद्ध मुख फेर लिया क्योंकि इनसे मुझे और दुःख हो रहा था।

जब मैंने पुनः निरीक्षण किया तो देखा कि चिता जल चुकी थी और मेरी निधि वहां न थी। मैं दीर्घ निःश्वास छोड़ता हुआ रो पड़ा।

यकायक एक पचण्ड प्रकाश मेरे चारो तरफ देदीप्य-मान हुआ। उसमें इतना तीव्र प्रकाश था कि मैंने अपना

मुख अंगुलियों से ढँक लिया। मुझे वह शब्द पुनः सुनाई पड़ा—वह शब्द जिसमें प्रचण्ड लहरों की गरज थी। ऊपर देखा तो वही देव कुछ दूर पर खड़ा दिख-लाई पड़ा, उसके पंख उड़ने के निमित्त फैले हुये प्रतीत हो रहे थे और अपने दाहिने हाथ में वह चमकती हुई वस्तु लिये था। वह इतनी पवित्र, इतनी देदीप्यमान, इतनी सुन्दर और मूल्यवान थी कि मुझे मालूम हुआ कि इसी वस्तु की आभा से चकाचौंध उत्पन्न हुई थी—क्या यह मेरी निधि थी। ओह ! यह मेरी निधि थी या मेरे प्रिय का का मुखमंडल ! मैं एक दूसरे में भेद नहीं मालूम कर सकता था।

तब मैं हर्षोत्फुल्ल हो चिल्ला पड़ा।

"ओह ! दुःख-देव इसके पहले कि मेरे पास से मेरी निधि ले जाओ, मुझे अपना आवरण हटाकर अपना मुख देखने दो, मुझे अपना मुख देखने दो, मुझे तुम अपने को अपने यथार्थ रुप में देखने दो।"

उसने आवरण हटा दिया और मैंने देखा—ईश्वर की मुखाकृति। मैं जाग पड़ा और मुझे पूर्ण सन्तोष था।

मैं बहुत श्रमित था, हार्दिक व्यथा थी, मैं शान्ति के निमित्त उतावला हो रहा था। मार्ग बहुत लम्बा और ढालू था। मेरे पैर कट गये थे और रक्तानुरंजित हो रहे थे। मैं हृदय को विदीर्ण करनेवाले भार को अधिक काल से वहन कर रहा था अतः मैंने अपने जीर्ण वस्त्रों को अपने शरीर में भलीभांति लपेट लिया और निद्रा में सारी व्यथा भूल जाने का प्रयत्न करने लगा।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

श्वास का शीघ्रता से रुक जाना, एक विचित्र मग्न होने का भाव, पुनः एक प्रचण्ड प्रकाश ! मैं लुढ़कता हुआ आगे बढ़ा, इसका कारण यह था कि मैं एक विचित्र देश में जा रहा था और मुझे यह अनुभव नहीं हो रहा था कि मैं शरीर को त्याग चुका हूँ। मैं "मृतक" हो चुका था।

कुछ क्षण पश्चात् मुझे वह प्रचण्ड प्रकाश सहन करने की बान पड़ गई। मैंने चतुर्दिशा में नेत्रों को दौड़ाया। मैंने किसी को होठों पर मधुर मुसुकान के साथ मेरे स्वागत को आते हुये देखा। उसके नेत्र में अमिट प्रेम की एक मधुर रेखा लक्षित हो रही थी।

उसने मेरे हाथों को अपने हाथों में पकड़ते हुये कहा "मैं बहुत देर से तुम्हारी बाट देख रही थी, तुमने यहां आने में जितना समय हमलोग समझ रहे थे उससे भी अधिक लगा दिया !"

तत्पश्चात् मैंने उससे अपने महान श्रम को बतलाया और कहा कि मुझे आराम करने की प्रगाढ़ इच्छा है। मुझे यह पता नहीं था कि किस स्थान पर मुझे आराम मिलेगा और न तो मैं यही समझ रहा था कि कहीं मुझे आराम का स्थान मिलही जायगा।

उसने कहा "यहां आने के पश्चात् तुम्हारी प्रथम इच्छा क्या है ?"

मैं अपने विदीर्ण और रक्तानुरंजित पदों को देखकर चिल्ला पड़ा ।

"देखो ! मेरे पद विदीर्ण हो गये हैं और रक्त से तर हो रहे हैं । इतनी अधिक थकावट है !"

उसने कहा "आवो, और देखो यह तुम्हारा पहला स्थान है जहां तुम आराम पा सकते हो।"

मैंने अपने पैर के सन्निकट देखा कि एक बहुत ही रमणीय महल था। उसमें विविधि भांति के रंगे विरंगे पुष्प अपनी अनेकों प्रकार की सुरभि से उस मंदिर की दीवारों को आवृत किये हुये थे, यह "इन्द्र-धनुष के रंग से रंगा गया प्रतीत होता था और बहुत पवित्र तथा सुन्दर था; परन्तु सांसारिक भाषा में वहां की वस्तुओं का वर्णन कौन कर सकता है !

मेरे मार्ग-प्रदर्शक ने कहा "मेरे प्यारे ! यहां विश्राम लो, यह तुम्हारा पहला विश्राम-स्थान है ।"

पुनः उसने मुझे नम्रतापूर्वक नीचे एक गद्दी पर लिटा दिया और मैं सो गया, कितनी देर तक मैं निद्रा में रहा

मुझे ज्ञान नहीं। पृथ्वी पर (मर्त्यलोक में) इसे अधिक काल कहते हैं परन्तु वहां कुछ देर मुझे न मालूम हुई।

जब मेरी निद्रा भंग हुई, मेरी पथ-प्रदर्शिका आनन्द-पूर्वक विहंस रही थी। मुझे देखकर उसने कहा—

"क्या तुम आगे चलने को तय्यार हो?"

मैंने अपने पैर को देखा, अब वे स्वर्ण-पादुका से सज्जित थे और उसमें जवाहिरात जगमगा रहे थे, ऐसे जवाहिरात पृथ्वी पर अलभ्य हैं, सारी व्यथा जाती रही, घाव पूरित हो गये थे और मुझमें अपूर्व शक्ति और आनन्द का भाव संचारित हो रहा था।

मैंने उच्च स्वर में कहा "यह पादुका किसकी है?"

उत्तर देते हुये उसने कहा "यह पादुका तुम्हारी है और तुम्ही ने इनको बनाया है, न तो यह किसी दूसरे का है और न तो किसी दूसरे ने इसके बनाने में भाग हो लिया है।

आश्चर्य्यान्वित होकर मैंने पूछा—"मैंने इन्हें कब बनाया है?"

उसने उत्तर दिया—"क्या तुम भूल गये हो कि किस प्रकार मर्त्यलोक में तुम दीनों की सहायता किया करते

थे और जब कभी छोटे वालक नग्न पद से तुम्हारे द्वार से जाते तो तुम उस समय उनको जूते इत्यादि से उनके कटे पैर की रक्षा किया करते थे। तुम यह नहीं समझ रहे थे कि जब तुम्हारे पैर आगे चलने को असमर्थ हो जायँगे तो यही परोपकारार्थ किये गये कार्य्य तुम्हारी सहायता करेंगे। जब किसी के ठंडे पैर को तुम मर्त्यलोक में आराम देते थे तो यहां तुम्हारी वाट देखने वाली पादुका में कोई नग चमक उठता था।

तव मुझे अपने कार्य्यों की स्मृति आ गई जिन्हें मैं भूल गया था।

मेरी पथ-प्रदर्शिका ने पुनः प्रश्न किया—"क्या तुम और कोई इच्छा भी करते हो?"

"मेरे वस्त्र जीर्ण और धूल-धूसरित हो गयेहैं" मैंने उत्तर दिया। क्योंकि मैं अपने मर्त्यलोक के वस्त्र अभी तक पहने हुये था "अब ऐसे पादुका के साथ पहनने योग्य वे नहीं रह गये हैं।"

तब उसने मुस्कराते हुये एक अन्य विश्राम स्थान की ओर इंगित किया और मुझे अपने समक्ष दूसरा स्थान

पहिले की अपेक्षा अधिक सुन्दर दिखलाई दिया। उसके द्वार अनावृत थे और प्रतीत होता था कि मेरे प्रवेश के निमित्त इसप्रकार खुले थे। मेरी पथ-प्रदर्शिका ने मुझे वहां बिठला दिया और मेरे वस्त्र शुभ्र और चमकीले हो गये। उस समय सारी सांसारिक व्यथा दूर हो गई। तब मुझे इसका अनुभव हुआ कि मेरा जीवन अमर था।

तब मेरे एक गुप्त भाव का, जिसको अभी मैंने प्रकट नहीं किया था मेरी पथ-प्रदर्शिका ने उत्तर देते हुये कहा —

"जब मर्त्यलोक के जीवन में तुमने नंगों को वस्त्र से वेष्टित किया था और अपने आवश्यकीय वस्त्रों में से दूसरों को दान दे दिया था, डूबते हुओं को सहारा दिया था, भूखों को खाना दिया था, तब तुम्हारी अनभिज्ञता में भी तुम्हारे हाथ तुम्हारे लिये यही वस्त्र बना रहे थे। हर समय जब तुम किसी बोझ से दबे हुये का भार उतारते थे या ढोने वाले की मदद दिया करते थे, किसी के आंसू पोछते थे या दुःखी हृदय को शान्त करते थे, हर समय जब तुम दूसरों के

अपराध क्षमा करते थे तो तुम्हारे सुन्दर हाथ तुम्हारे निमित्त यह महल (विश्राम-स्थान) बनाने में लगे हुये थे और हमलोग समझ रहे थे कि तुम किसी के प्रति प्रेमभाव दर्शा रहे थे अथवा किसी दुःखित आत्मा को तुम शान्ति दे रहे थे अथवा किसी के अपराध को क्षमा कर रहे थे। क्योंकि यह महल और सुन्दर होता जाता था और जब हमलोग किसी मर्त्यलोक से आये हुये पथिक का स्वागत करने तुम्हारे इस महल से जाते (कोई पथिक यहां पथ-प्रदर्शक की अनुपस्थिति में नहीं आ सकता) तो हमलोगों को विश्वास होता कि अब तुम शीघ्र यहां आवोगे—तुम्हारा महल सुन्दरता और पूर्णता प्राप्त कर चुका था।

तब मैंने अपने हाथों से अपने वक्षस्थल को धर दबाया और एक अकस्मात उमंगित होनेवाली अभिलाषा का ध्यान करते हुये मैंने अपनी पथ-प्रदर्शिका की ओर देखा। यह अभिलाषा एक बड़े दुःख की कल्पना थी तथा थी यह एक हृदय की स्मृति, जिसको अपने मर्त्यलोक जीवन में, अपने प्रिय को प्राप्त करने से विमुख रहना पड़ा था।

मेरी आकृति द्वारा मेरे भावों को ताड़ती हुई मेरी पथ-प्रदर्शिका ने कहा—"हां ! तुमको अपने भावों का प्रयोग वाणी में न करना चाहिये क्योंकि तुम्हारे जैसा प्रेम इस लोक की वस्तु है और जिस लोक को तुमने त्याग दिया है वहां ऐसा प्रेम नहीं होता। केवल यहां तुमको अपनी अभिलाषा की पूर्ति मिल सकती है, देखो ! तुम्हारे सम्मुख क्या है ?"

मैं क्या देखता हूँ कि एक सुन्दर कोठी के सोपान पर खड़ा हूँ। वह इतनी सुन्दर कोठी थी कि जिसकी सुन्दरता का वर्णन करने का मुझे साहस तक नहीं हुआ। मेरी पथ-प्रदर्शिका ने कहा—"अहा ! पवित्र आत्मा ! तुम्हारी प्रत्येक प्रार्थना, अपने प्रिय के प्रति प्रत्येक निःस्वार्थपूर्ण शान्ति व सुख की मंगल कामना, रात्रि को बाट देखने के समय गिरती हुई प्रत्येक अश्रु-विन्दु को यहाँ हमलोग देख रहे थे और उसी समय तुम्हारा यह विश्राम-स्थान बन रहा था, जहां अब तुम्हारे हृदय की अभिलाषा पूर्ण होगी।

अब मैं तुमको अवश्य छोड़कर जाऊँगी क्योंकि अब तुमको इसी समय उसका साक्षात्कार होगा। अब आनन्द

सागर में प्रवेश करो, देखो द्वार हिल रहे हैं। अच्छा, नमस्कार !"

द्वार खुल गये परन्तु मेरे नेत्र चकाचौंध से देख न सकते थे, मैं अभी थोड़ी देर का आया हुआ मर्त्य-लोक का पथिक था और वहां की प्रतिभा का अवलोकन करना कठिन प्रतीत होता था। कुछ क्षण पश्चात मुझे किसी पूर्व विस्मृत प्रिय का मुखमंडल दिखलाई पड़ा, मैंने उसके हाथों का स्पर्श किया, जिसके निमित्त मैंने अनेकों बार प्रार्थना की थी, उसका हाथ मेरे वक्षःस्थल पर था। असीम आनन्द की लहर में मग्न होता हुआ मैं वहां के लोगों द्वारा वहन किया जा रहा था। इतने मे एक शब्द हुआ—

अलम्! मर्त्यलोक का कोई जीव उस स्वर्गीय जीवों के आनन्द का वर्णन नही कर सकते—वहां हमारी "पवित्र-मृत आत्मा" का निवास है।

एक दिन मैं जगा, वे लोग कहने लगे कि मैं रुग्ण था। वे लोग कई दिवस से सोच रहे थे कि मैं मृतक हो चुका था परन्तु मैं भलीभांति जानता हूँ कि मेरी क्या अवस्था थी ?

मैं साहसपूर्वक और अपूर्व हार्दिक विश्वास के साथ अपने नैमित्तिक कार्य में प्रवृत्त हुआ क्योंकि मुझे अपने नेत्रों से दिखलाई दिया था और मेरे हृदय को स्वभाविक प्रतीति थी।

रहस्य

अपने स्वर्गीय जीवन में मुझे एक दिन एक वृद्धा से राजमार्ग पर साक्षात्कार हुआ। उसकी मुखाकृति मलीन थी और उसकी आंखों में अवर्णनीय दुःख और शोक लक्षित हो रहा था—उसके शुष्क नेत्र आर्तपूर्ण और शोकाकुल थे। हमलोग चौराहे के समीप थे और वह वृद्धा भटक रही थी। उसे अपने मार्ग का निर्णय नहीं हो रहा था। मैं ऐसेही अवसर की ताक में था, अतः मै उसके समीप पहुँचा और पूछने लगा—क्या मैं तुम्हारी

सहायता कर सकता हूँ ? मुझे ऐसा मालूम हो रहा है कि तुम्हें अपना मार्ग भूल गया है, तुम यहाँ से अपरिचित हो। उसके गहरे नेत्र मेरे ऊपर कुछ क्षण के निमित्त गड़ से गये, उससे प्रकट होता था कि वह प्रथम मेरे आत्मा की परीक्षा करेगी और तत्पश्चात् मेरे प्रश्न का उत्तर देगी। निःसन्देह जब उसे मेरे हृदय मे उसके प्रति दया और सहानुभूति मिली, मैं अपना भाव छिपा न सका।

"मेरा एक मित्र था। वह मुझपर बड़ा स्नेह करता था। साथही मुझे भी उससे अनुरक्ति थी। परन्तु मैंने अपना भाव उसपर कभी प्रकट नहीं किया।"

यह कहते हुए वह अपने वक्षःस्थल को अपने हाथें से दबा रही थी। उसकी स्वांस वेग से चल रही थी। मुझे उसे देखकर यह मालूम हुआ कि अभी गिर पड़ेगी अतः उसके कंपित शरीर को अपने हाथों से बलपूर्वक मैंने आश्रय दिया। मैंने उससे पुनः प्रश्न किया—"तुमने अपना भाव उससे प्रकट क्यों नहीं किया ?" मै भलीभाँति यह समझता था कि दुःख का निवारण किसी से प्रकट कर देने पर होता है। यह ठीक नही

है कि प्रथम शिक्षा देने लगे कि शोक करना मूर्खता है। अतः शोक न करना चाहिये, इससे शोक बढ़ता है! उसको वाणी द्वारा प्रकट करने से ही उसका वेग घटता है। पहले मुझसे यह त्रुटि हो चुकी थी। जब यह प्रकट किया जाय कि दुःख प्रकट न कर भीतरही घोंट दिया जाय तो फल यह होता है कि वह धधकने लगता है। इस कारण मैंने उसके दुःख को न्यून करने के निमित्त उससे पूछा।

उसने कहा—मैं स्वभावतः चुप रही। जैसा प्रत्येक जीव करते है, मैंने भी वैसाही किया। मुझसे आदान प्रदान सब क्रियायें हो रही थी। परन्तु मैं मूक थी।

मैंने पुनः कहा—क्या अभी भी कहने का अवसर नहीं आया। अब क्यों नहीं बतला रही हो? उसने अपने मुख को वस्त्र से वेष्टित करते हुये और सिसकते हुये कहा—"वह कल मर गया।"

❀ ❀ ❀ ❀

पुनः मैं एक बालिका से मिला। उसकी मुठ्ठी फूलों से भरी थी। उनको एक असंगठित जाल के रूप मे उसने बुन लिया था। उनमें से कुछ कटीले थे अतः उसके हाथ उनसे छिल गये थे और रक्तानुरंजित हो रहे

थे। मैंने देखा उसके नेत्रों में चिरकाल के अश्रु लक्षित हो रहे थे। नवयुवक रोकर शान्ति पा सकता है किन्तु वृद्धजन के रोने से रक्ताश्रु पतित होते हैं और देखनेवाले के हृदय को भेद देती हैं।

मैंने उससे पूछा—क्या मैं किसीप्रकार तुम्हारी सहायता कर सकता हूँ? उसने उत्तर दिया—नहीं, मेरी सहायता कोई नहीं कर सकता।

मैंने गम्भीरता से कहा—ओह! "बालिका तुम अवश्य दुःखित हो, परन्तु बतलाओ तो, मैं शायद तुम्हारे निमित्त कुछ कर सकूँ।"

उसने उत्तर दिया—'मेरी छोटी भगिनी गत सप्ताह मर गई।' और पुनः वेग के साथ अश्रुपात करने लगी। 'मैं उसके पास यह पुष्प लेकर जा रही हूँ।'

मैंने कहा—"तो तुम्हारी भगिनी तुमसे बहुत प्रसन्न होगी क्योंकि वह अपने स्वर्गीय निवास से तुम्हें देखेगी। इस समय वह तुम्हारा प्रेम अवश्य करती है।" बालिका ने कहा—'हटो तुम नहीं समझते। भला अब कैसे उसे अपने बच्चे को दे सकती हूँ।'

❀ ❀ ❀ ❀

रात्रि हो गई। मुझे सूने गिरिजा से जाना था जो ईश्वर की शान्ति-वाटिका है। एकायक मुझे स्वभावतः मार्ग में लौटना पड़ा। मैंने देखा कोई पुरुष मृत्यु शय्या पर पड़ा था, उसके नेत्र आंसुओं से पूर्ण थे और उसकी मुखाकृति बिल्कुल मलीन थी। उसको देख मुझे कुछ सहानुभूति उत्पन्न हुई। मैंने दयाभाव से पूछा—ओह वृद्ध! क्या तुम्हें कोई रोग हो गया है? उसने उत्तर में कहा—नहीं महाशय! मुझे शारिरिक रोग नहीं है, मानसिक पीड़ा है। यहां एक स्त्री पड़ी है जिसको मैं अपने हृदय के समान प्रेम करता था परन्तु मैंने अपना भाव उससे कभी नहीं कहा।

मैंने सहानुभूति से मस्तक को झुका दिया और अपने मार्ग का अनुसरण किया। मैं क्या कहता? ओह! मेरे बन्धुओं और बहनों! क्यों हमलोग अपने भावों को गुप्त रखते हैं और तबतक प्रकट नहीं करते जबतक हमारे प्रिय इस असार संसार से विदा नहीं हो जाते। क्या कारण है कि हमलोग अपने प्रेम को प्रकट करने से विमुख रह जाते हैं। कैसा रहस्य है? कुछ पता नहीं।

कर्मफल

जो लोग सुख और शान्ति देनेवाली अदृश्य शक्तियों को खोज में लगे हैं, उनके लिये यह भी सन्देहास्पद है कि कहीं उसका फल अनिष्टकारी निकल जाय और वे बजाय सुख के दुःख का आह्वान न करने लगें। मनुष्य की प्रत्येक शक्तियां, जिसका प्रयोग वह अज्ञानता-वश अनुचितरूप में करता है अथवा अपनी स्वार्थ-मयी प्रवृत्तियों के वशीभूत होकर उनका दुरुपयोग करता है, उसके सत्यानाश का कारण बन सकती हैं। यही

कारण है कि बहुत से लोगों को अपनी आन्तरिक शक्ति—महती शक्ति का पता नहीं है। ऐसा होना असम्भव भी नहीं, परन्तु सभी लोग यदि इस बात को समझ जायं तो हो सकता है, अपनी कल्याणप्रद भावनाओं में इसका उपयोग न कर वे इसका उपयोग अनुचित तरीके से करने में बाज न आवें।

✓ कोई मनुष्य कर्म को दोषी नहीं ठहरा सकता, उसका फल तो भोगना ही होगा—जो लोग ऐसा समझकर कर्म करते हैं, उनका कल्याण होता है, और जो लोग यह समझकर कर्म करते हैं कि हम कर्म के फल से किसी न किसी तरह छुटकारा पा जावेंगे, उनका कल्याण नहीं होता। सुख और शान्ति का मिलना मन की पवित्र भावनाओं पर निर्भर है और मन की पवित्र भावनायें कर्म पर निर्भर हैं। कर्म की गति कभी रुकनेवाली नहीं। उसकी छाप हर जगह मौजूद है। उचित कर्म करने पर अच्छा और अनुचित कर्म करने पर बुरा फल मिलना अनिवार्य है। "अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"। कर्म क्रोध करना नहीं जानता मगर साथही साथ वह क्षमा करना भी नहीं जानता।

कर्म पक्षपातरहित है। वह हमें ठीक २ वही फल देता है जो हमें मिलना चाहिये—इसमें ज़रा भी भूल नहीं हो सकती। यह बात कोई ज़रूरी नहीं है कि कर्मों का फल फौरन ही मिले। वह तो मिलेगा ही चाहे आज मिले चाहे कल और चाहे चार छः दिन बाद।

जो कुछ हमने (पहले उस जन्म में) किया था इस समय उसी का फल भोग रहे हैं। अथवा इसे यों कहिये कि हम अपने पूर्व कृत विचारों का परिणाम भोग रहे हैं। कारण, विचारों से ही हमारे कर्म की उत्पत्ति हुई है और विचारों एवं कर्मों का अलग अलग करना असम्भव है।

यद्यपि यह बात सत्य है कि हमने भूतकाल में जो कुछ विचार स्थिर किया वह बिना समझे बूझे, यह सत्य है कि विचार करते समय हम यह नहीं जानते थे कि विचारों में इतनी प्रबल शक्ति है और यह भी सत्य है कि हम विचारों के फल से अनभिज्ञ थे; फिर भी विचारों के परिणाम में कोई परिवर्तन न हो सका। फल तो जैसा विचार था वैसा हुआ ही। वस्तुतः हमारे जीवन का रूप हमारे कर्मों द्वारा निर्दिष्ट हुआ

है अथवा हमारे कर्मों के जनक हमारे विचार ही हैं—अतएव हमारे विचार ही हमारे जीवन का रूप निर्दिष्ट करते हैं।

किन्तु आश्चर्य तो इस बात का है कि लोग इस अमिट सिद्धान्त को स्मरण नहीं रखते। न तो इसका जिक्र किसी मन्दिर वगैरह धर्म-स्थानों में होता है और न किसी पुस्तकों में ही। इस तरह इसकी वास्तविकता एकप्रकार से अदृश्य रहती है और कालान्तर में एक नया रूप धारणकर प्रकट होती है। यह सिद्धान्त सनातन का है, आज का नहीं। भगवान बुद्ध ने ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व इसी सिद्धान्त का निरूपण और उपदेश किया था।

हमारे जीवन का रूप हमारे विचारों द्वारा निश्चित हुआ है। हमारी वर्त्तमान स्थिति हमारे विचारों का ही परिणाम है। जिस तरह बैलगाड़ी के बैल का अनुसरण पहिया करता है, उसी तरह मस्तिष्क के ओछे विचारों का अनुसरण दुःख करता है। और जिस तरह शरीर का अनुकरण छाया करती है, उसी तरह पवित्र विचारों का अनुसरण सुख करता है।

महापुरुष ईसा ने कहा है "बुरे विचारों का मतलब है पतन, और दुःख तथा अच्छे विचारों का फल है उन्नति एवं सुख।"

जेम्स एलेन ने कहा है—

"यदि विचारों का एक वृक्ष मान लें तो कर्म उसका बौर होगा और सुख अथवा दुख उसका फल। मनुष्य जिसप्रकार का वृक्ष लगायेगा, मीठा अथवा कड़वा वैसा ही उसका फल भी होगा।

"मनुष्य का जीवन-निर्माण कल्पनात्मक नहीं है, बल्कि उसके लिये एक सुनिश्चित व्यवस्था अथवा नियम है। नियम का जितना महत्व आप बाहर देख रहे हैं, भीतर भी वह उतना ही रहस्यपूर्ण है।

अपनी उन्नति अथवा अवनति करने का कारण मनुष्य ही स्वयं है। वह अपने ही विचाररूपी संग्रहालय में ऐसी २ सामग्रियों को इकट्ठा करके रखता है जो उसके सर्वनाश का कारण बनती है और ऐसे २ उपकरणों को भी प्रस्तुत करता है जिनके द्वारा उसको शान्ति एवं शीतलता की उपलब्धि हो सकती है।

"आजकल आत्मा-सम्बन्धी जितने सुन्दर सुन्दर शब्द

प्रकट हुये हैं और उनका प्रचार हुआ है, उनमें सबसे महत्व का यही है कि अपने विचारों का एकमात्र अधिपति मनुष्य ही है। वही अपने भाग्य का विधाता, परिस्थितियों का निर्माता एवं अपने चरित्रका सुसंगठितकर्ता है।"

अब आप ही बतलाइये ऐसी सूरत में विचाररूपी महती शक्ति का उचित उपयोग करना कितना आवश्यक है। यदि हम इसे अपनी स्वार्थमयी वृत्तियों के वशीभूत होकर अपने वैयक्तिक स्वार्थ में लगाते हैं तो हम तिरस्करणीय हैं।

इस शक्ति का उपयोग करने पर हमारी अधिकांश कामनायें पूरी तो अवश्य हो जायेंगी, मगर हमें इस बात का प्रयत्न करना चाहिये कि हमारे विचार अच्छे हों, न कि बुरे ताकि उसका फल भी अच्छा ही मिले न कि बुरा।

पहले तो हमें यह चाहिये कि हम अपने पूर्व कर्मों से छुटकारा पाने का प्रयास करें। इसका मतलब यह है कि यदि हमें यह विदित हो जाय कि हमारे जीवन मे कुछ बातें हमारे पूर्व विचारों एवं कर्मों के फल हैं तो हम उस फल को पूर्ण रीति से भोगने के लिए

तैयार हो जायँ। मगर उस फल को भोगते हुए हम अपने विचारों का उचित आश्रय देकर एक ऐसी शक्ति का संचार कर सकते हैं जिसका प्रभाव भविष्य में हमारे जीवन के सुख और आनन्द पर पड़े। कार्य और कारण का घनिष्ट सम्बन्ध है—यह जान लेने के बाद आप अब अपने मन में विचार कीजिये कि क्या आप को इस समय किसी तरह दुख है और क्या जब आप उसका कारण ढूँढने लगे हैं तो क्या इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि इस दुख का बीजारोपण आप ही द्वारा महीनों, वर्षों अथवा और भी पहले हुआ था ? यदि आप की ऐसी धारणा है तो आप इस कष्ट के होते हुए भी अपने मन में दिव्य पवित्र-प्रेम और आनन्द-मय विचारों का बीज बोइये और तब आप को मालूम हो जायगा कि इस मंगलमय नूतन बीज से एक ऐसा वृक्ष उत्पन्न होगा—जिसके द्वारा आपको सुख और आनन्दरूपी फल मिलेगा—जिसके सेवन करने से आपको वर्तमान कष्ट के सहन करने की महती शक्ति प्राप्त होगी और आगे चलकर आप का सारा दुख अपने आप हमेशा के लिये दूर हो जायगा।